1'S hp.

दिव्य रश्मियाँ :-

विश्व में भारत को सदैव धार्मिक देश कहा जाता है। धर्म जब संसार में लुप्त होता है तब सर्वप्रथम धर्म भारत से प्रकट होता है। आज मानव को भौतिक विज्ञान के कारण धर्म का कोई महत्व दिखाई नही पड़ता है। आज विज्ञान ने बहुत से अविष्कार कर मनुष्य कों चकित कर दिया है। इसलिए आज धर्म प्रायः लुप्त हो गया है। आज विज्ञान सत्य प्रतीत होता है, धर्म असत्य। अतः व्यक्ति आज धर्म की परिभाषा ही भूल गया है।

मेरा आशय किसी धार्मिक सम्प्रदाय या संगठन से नहीं है। मेरी दृष्टि में "धर्म एक विधि एवं तंत्र है" जिससे ईश्वर, परमात्मा सत्य जो भी नाम दें – जानने का विज्ञान है।

आज सही अर्थों में धर्म को नहीं समझा जा रहा है। धर्म भी एक बहुत बड़ा विज्ञान है। भौतिक विज्ञान आविष्कार कर सत्य हमारी आंखों के सामने प्रकट करता है। कौन देखता है कौन समझता है को जानने को धर्म कहते है।

गीता सारे विश्व में एक मनस शास्त्र के रूप में प्रसिद्ध है। गीता की व्याख्या भी संसार के अनेक विद्वानों व दार्शनिकों ने की है। हमारे भारत के विद्वानों व दार्शनिकों में सर्वमान्य, सूक्ष्मदर्शी राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन, महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक जैसे विद्वानों ने गीता की व्याख्या की है।

हमारे धार्मिक शास्त्रों में उच्च क़ोटि के तर्क भरे हुए है। उन्हें समझ पाना हर एक के वश की बात नहीं है। हमारे धार्मिक शास्त्रों को धार्मिक व्यक्ति समझ सकता है। धार्मिक व्यक्ति की पहली पहचान है कि वह महान् तार्किक होता है। जो तर्क नही जानता वह धार्मिक नहीं हो सकता।

जो तर्क नहीं जानता वह वकील भी नहीं हो सकता परन्तु आज वकील समुदाय को धार्मिक नहीं समझा जा रहा है। वकील तर्क जानते है। इसलिए ही महात्मा गांधी व लोकमान्य तिलक ने गीता की व्याख्या की, जो सारे विश्व में प्रसिद्ध है। वे धार्मिक पुरुष थे।

मेरी दृष्टि में गीता विश्व के सभी विद्वानों को समझ नहीं आई, क्योंकि यह एक स्पष्ट तथ्य है कि गीता, महाभारत के समय भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कही थी। अतः

दिव्य रश्मियाँ :–

विश्व में भारत को सदैव धार्मिक देश कहा जाता है। धर्म जब संसार में लुप्त होता है तब सर्वप्रथम धर्म भारत से प्रकट होता है। आज मानव को भौतिक विज्ञान के कारण धर्म का कोई महत्व दिखाई नहीं पड़ता है। आज विज्ञान ने बहुत से अविष्कार कर मनुष्य को चकित कर दिया है। इसलिए आज धर्म प्रायः लुप्त हो गया है। आज विज्ञान सत्य प्रतीत होता है, धर्म असत्य। अतः व्यक्ति आज धर्म की परिभाषा ही भूल गया है।

मेरा आशय किसी धार्मिक सम्प्रदाय या संगठन से नहीं है। मेरी दृष्टि में "धर्म एक विधि एवं तंत्र है" जिससे ईश्वर, परमात्मा सत्य जो भी नाम दें – जानने का विज्ञान हैं।

आज सही अर्थों में धर्म को नहीं समझा जा रहा है। धर्म भी एक बहुत बड़ा विज्ञान है। भौतिक विज्ञान आविष्कार कर सत्य हमारी आंखों के सामने प्रकट करता है। कौन देखता है कौन समझता है को जानने को धर्म कहते है।

गीता सारे विश्व में एक मनस शास्त्र के रूप में प्रसिद्ध है। गीता की व्याख्या भी संसार के अनेक विद्वानों व दार्शनिकों ने की है। हमारे भारत के विद्वानों व दार्शनिकों में सर्वमान्य सूक्ष्मदर्शी राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन, महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक जैसे विद्वानों ने गीता की व्याख्या की है।

हमारे धार्मिक शास्त्रों में उच्च कोटि के तर्क भरे हुए है। उन्हें समझ पाना हर एक के वश की बात नहीं है। हमारे धार्मिक शास्त्रों को धार्मिक व्यक्ति समझ सकता है। धार्मिक व्यक्ति की पहली पहचान है कि वह महान् तार्किक होता है। जो तर्क नही जानता वह धार्मिक नहीं हो सकता।

जो तर्क नहीं जानता वह वकील भी नहीं हो सकता परन्तु आज वकील समुदाय को धार्मिक नहीं समझा जा रहा है। वकील तर्क जानते है। इसलिए ही महात्मा गांधी व लोकमान्य तिलक ने गीता की व्याख्या की, जो सारे विश्व में प्रसिद्ध है। वे धार्मिक पुरूष थे।

मेरी दृष्टि में गीता विश्व के सभी विद्वानों को समझ नहीं आई, क्योंकि यह एक स्पष्ट तथ्य है कि गीता, महाभारत के समय भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कही थी। अतः

महाभारत को सर्वप्रथम समझना अनिवार्य है बिना महाभारत समझे गीता नहीं समझी जा सकती। परन्तु महाभारत आज भी रहस्य बना हुआ है। महाभारत की किसी ने व्याख्या नही की है। भला कर भी कैसे सकते है क्योंकि महाभारत को सभी ने ऐतिहासिक घटना की तरह जानते है व मानते है।"

आज महाभारत का अनुकरण बिना महाभारत को समझे करेंगे तब सब गलत हो जाएगा और हो ही रहा है। महाभारत व रामायण दोनों एक ही सत्य को उजागर करते है। सत्य को पिक्टोरियल लैंग्वेज यानि चित्रों की भाषा में उच्च्व स्तरीय रूप प्रकट किया है। विश्व में इन दो कथाओं के स्तर की कोई कथा नहीं है ऐसे बाबा रामदेव की छोटी–छोटी कथाओं में सत्य का पूरा परिचय दिया हुआ है। जिन्हे मारवाड़ी भाषा में परचे कहते है। अन्य हजारों कथाएं हैं जो सत्य को चित्रों की भाषा में प्रकट करती है।

"मै कौन हूँ" इसे इन्ही कथाओं के माध्यम से दर्शाया गया है।

यदि आप से कोई पूछे कि आप कौन है। तब आप सिर्फ अतीत का वर्णन करेंगे। अतीत कभी होता नहीं है। अतीत सिर्फ हमारी स्मृति है। जब अतीत नही होता तब भविष्य भी नही होता है। भविष्य सिर्फ हमारे अतीत की छाया है इसलिए धर्म हमेशा वर्तमान में रहना सिखाता है।

शरीर शास्त्रियों ने इस शरीर को चीर फाड़ कर देख लिया परन्तु आप यानि मैं या चेतना इस शरीर में नहीं मिली है। इसी चेतना को यानि स्वयं को देखने के भी तरीके है। हमें सूक्ष्म चीज को देखने के लिए खुर्द बीन चाहिए जिससे सूक्ष्म चीज को बड़ा करके देखा जाता है क्योंकि खुर्द बीन सूक्ष्म से सूक्ष्म को भी बड़ा करके दिखा देती है। इसी प्रकार बड़ी वस्तु देखने के लिए उसे सुक्ष्म रूप देना पड़ता है, जैसे भारत व संसार का नक्शा। हम भारत व संसार को एक साथ नहीं देख सकते लेकिन पैमाने द्वारा इन्हें छोटा कर देखा व समझा जा सकता है।

इसी प्रकार परमात्मा, ईश्वर, सत्य जो भी नाम दें उसे भी देखने व समझने का भी तरीका है। उसे भी देखा व समझा जा सकता है। हमारे धार्मिक ऋषियों ने इन्ही पौराणिक कथाओं में सत्य को प्रकट किया है। यदि हम महाभारत को इतिहास की घटना की तरह

देखें तब बहुत सी असंगत बातें प्रतीत होती है। परन्तु आज जैसा महाभारत को समझा जा रहा है वह गलत है क्योंकि महाभारत में किसी प्रकार की मारकाट व लड़ाई झगड़ा नहीं था। हम महाभारत को युद्ध की तरह समझ रहे है परन्तु जैसा युद्ध हम समझ रहें है वैसा नहीं था। यह एक धार्मिक युद्ध था। महाभारत एक आदमी की साधना का परिणाम है। इस संसार से कैसे मुक्त हुआ जाए? यह सारी कथा मुक्ति तक पहुँचाने वाले रास्ते का बारीकी से प्रतीकों व चित्रों की भाषा द्वारा वर्णन है।

महाभारत को समझने के लिए सबसे पहले उनके पात्रों पर संक्षिप्त में गौर करने से आपको मालूम होगा कि हम स्वयं को कैसे जाने ? महाभारत होने पर ही स्वय को जाना जा सकता है या स्वयं को जानने पर महाभारत हो सकता है।

महाभारत में दो पक्ष कौरव व पाण्डु है। पाण्डु का आशय प्रत्यक्ष और कौरव का आशय अप्रत्यक्ष से है। पाण्डु छः थे परन्तु कौरव पूरे सौ थे। कौरवों का पिता धृतराष्ट्र अन्धा था जैसे हमारे भीतर आदर्श, नियम, कानून विराजमान है जिससे राष्ट्र का संचालन होता है। बाहर परन्तु हमारे भीतर भी धृतराष्ट्र है। वेदव्यास जी ने हमारी काया को कुन्ती से सम्बोधित किया है। कुन्ती जब कुंवारी थी तब कर्ण पैदा हुआ। कर्ण का आशय हमारे कान से है। जो भी घटना पहले बाहर घट जाती है वह हमारे कान द्वारा भाषा से समझी जाती है। काया से उसका सीधा संबंध पुल की तरह नहीं है इसलिए कुन्ती के कुंवारी के कर्ण पैदा होता है। कर्ण सूर्य पुत्र है यानि प्रत्येक घटना प्रकाश में घटती है वहीं कर्ण द्वारा सुनी जा सकती है इसलिए कर्ण सूर्य पुत्र है। परन्तु अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव का सीधा संबंध हमारी काया यानि कुन्ती से है इसलिए ये पांच पांडु कुन्ती व मादरी के पुत्र है। अर्जुन का आशय आँख से है। भीम का आशय स्पर्श से है। युधिष्ठर का आशय हमारी पुरूषोत्व शक्ति से है। नकुल व सहदेव दोनों मादरी के पुत्र थे क्योंकि पाण्डु के दो रानियां थी कुन्ती व मादरी। नकुल से आशय नाक से व सहदेव का आशय स्वाद यानि जीभ से है। पांचों पाण्डुओं की पत्नी द्रोपदी थी। द्रोपदी का आशय हमारी जनेन्द्री से है। द्रोपदी का मतलब दो पद, दो कार्य जैसा कि मूत्र त्याग करना व सन्तान पैदा करना। परन्तु समझा ऐसा जाता है कि पांच पाण्डुओं की पत्नी द्रोपदी थी। ऐसे हमारी जननेद्री में द्रोपदी के ही गुण धर्म पत्नी के से है। जब मूत्र त्याग व संभोग में अन्य पांचो इन्द्रियाँ निष्क्रिय सी होती है। और सभी का सहयोग भी होता है। चाहे आदमी हो या औरत वह

राजा द्रोपद की बेटी थी। द्रोपद का मतलब भी दो–दो पद जैसे हमारे दो गुर्दे व अण्ड कोष से है।

दुसरे पक्ष के पात्र धृतराष्ट्र जो हमारे भीतर बाहर से लिया ज्ञान है उसको सम्बोधित किया है। इसलिए धृतराष्ट्र अन्धा है। उनके 100 पुत्र यानि आदमी के 100 दुख होते है। सबसे बड़ा पुत्र दुर्योधन आज धन का ही शासन है। ऐसे लोकतंत्र है परन्तु सब धन के बल पर है। धन का सभी को दुख है चाहे निर्धन हो या धनी हो। दुसरा पुत्र दुःशासन का आशय आसन पद प्रतिष्ठा की सभी को सभी को लगी रहती है। पद के लिए प्राःय सभी लोलुप है। अतः घृतराष्ट्र के सौ पुत्रों के नाम दु से शुरू होते है। दभम, दुष्दर्भ, दुर्लभ आदि। एक दुर्योधन की बहिन जिसका नाम भी दुशाला है। जिसे हम इज्जत कहते हैं अतः बाहर से हमारे शरीर की इन्द्रियों द्वारा लिया ज्ञान अज्ञान ही है।

हमारे शरीर पर अज्ञान का शासन है। पाण्डु व कौरव साथ–साथ घुल–मिलकर रहते है। हजारों लाखों बदलते हुए फिर कभी मानव योनि में भी आ जाते है। सब योनियाँ कौरव व पाण्डुओं के गहरे संबंधो से निर्मित होती है।

कुन्ती पुत्र कर्ण दुर्योधन के साथ है। हमारे कान से सुनी हुई बातें हमारे अज्ञानी के साथ है हम सुनी बातों को बहुत महत्व देते है। परन्तु महाभारत को करवाने वाला शकुनि था। शकुनि का आशय शक शंका से है। हम सुनी बातो पर विश्वास कर लेते हैं। इसलिये सत्य से परिचित नहीं हो पाते है जब तक हमारे में शक करने कर क्षमता नहीं होगी तब तक हम जीवन, धर्म व सत्य को नही समझ सकेंगे।

सत्य व धर्म विश्वास से नहीं जाना जा सकता । क्योंकि विश्वास का मतलब है कि जो चीज है नहीं उसे मान लेना विश्वास कहलाता है। जो उसे मानने की आवश्यकता नही है। विश्वास की जरूरत नहीं है। यदि धर्म को जानना है तो शक पैदा करना होगा। शक ही सत्य की मंजिल तक पहुँचा सकता है। मात्र सुनी हुई बातो से सत्य प्राप्त नहीं होता है।

इसलिए शकुनि के कारण महाभारत हुआ। भीष्म पिताम, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुर ये भी कौरव पक्ष की ओर हैं। क्योंकि हमारे शरीर पर शासन अज्ञान का है। बाहर से लिया ज्ञान अज्ञान की भाँति होता है।

भीष्म पितामह का आशय हमारे पूर्व जन्मों से है। यदि हमारे पिछले जन्म देखले तब पता चलेगा की हमारे सैकड़ों तीर लगे परन्तु फिर भी हम जिन्दा है। तीरों की शैय्या पर हम सोये हुए हैं। हमें पता नहीं है। हमें पता महाभारत होने पर ही चल सकता है। आखिर में भीष्म पितामह तीरों की शैय्या पर सोये हुए को कृष्ण के साथ अर्जुन व अन्य भाई देखते हैं। अतः यह हमारा सूक्ष्म शरीर है। जो हजारों शरीर धारण कर चुका है।

वहीं भीष्म पितामह जो गंगा के आठवें पुत्र थे। यहां गंगा का आशय बुद्धि से है। शांतनु राजा ने गंगा से शादी इस शर्त पर की वह अपनी इच्छानुसार जो भी करे वह रोकेगा नहीं। तब सात पुत्रों को गंगा ने पानी में बहा दिया। आठवें के लिए शांतनु अड़ गये, तब वही भीष्म पीतामह हो गये। यहां सात पुत्रों से आशय हमारे शरीर के सात केन्द्र धर्मशास्त्रों में बताये हैं। मूलाधार से लेकर सहस्राकार तक उन सातों केन्द्रों को तोड़ना ही सात पुत्रों को पानी में बहाने का मतलब है। शांतनू राजा थे यानि सातों केन्द्र भरे हुए होते हैं उन्हें तोड़ना और उसे खाली करने का आशय है। यह कहानी हमारे शरीर में सूक्ष्म शरीर की कहानी है।

द्रोणाचार्य, कृपाचार्य का आशय सुने हुए ज्ञान व सुने हुए धर्म और सत्य के बारे में है। आचार्य का मतलब ही पुराना होता है, द्रोण का मतलब पिटारा यानि कोई चीज ग्रहण करने की शक्ति। हम सब द्रोणाचार्य हैं, हम बहुत ज्ञान रखते हैं। ऐसा हर मनुष्य समझता है और जो बहुत कुछ सुन–समझकर ज्ञान देता है वह द्रोणाचार्य है। जिसका सर्वश्रेष्ठ शिष्य अर्जुन है। परन्तु द्रोणाचार्य व धर्माचार्य भी अज्ञान के अधीन है। वे धृतराष्ट्र के अधीन है। अतः आखिर युद्ध में ये मारे जाते हैं। उसका तात्पर्य यही हुआ कि हमने जो भी ज्ञान अनुभव प्राप्त किया है उन सबसे मुक्त होना होता है। अतः महाभारत की सारी कहानी हमारे ज्ञान की इन्द्रियों व सूक्ष्म शरीर की है।

हमारा मूलभूत मन दर्पण की तरह है। जब हम बच्चे की तरह पैदा होते हैं तब हमारा दर्पण साफ होता है। फिर बाहर का ज्ञान व अनुभव धूल की भांति दर्पण पर जमा होते रहते हैं। दर्पण पर अनेक प्रकार की धूल जमा हो जाती है। लेकिन यहां धूल दर्पण की शुद्धता को नष्ट नहीं कर सकती है। हमारा मूलभूत मन वैसे का वैसा ही रहता है। लेकिन हमारा संबंध दर्पण से नहीं है। हमारा संबंध सिर्फ धूल से है उस दर्पण से संबंध

होना ही चेतना से संबंध होना है परन्तु जब तक धूल से हमारा संबंध है तब तक चेतना से संबंध नहीं हो सकता।

जब तक हमारा संबंध बाहरी ज्ञान से यानि उस धूल से है। तब तक चेतना से संबंध नहीं हो सकता। हमारा जो मन है वह सब धूल है। हमारा संबंध धूल से यानि अनुभव, ज्ञान, हमारी स्मृतियों से हैं जो सब घूल है। धर्म का आशय ही यही है कि उस धूल से कैसे मुक्त हुआ जाए ?

धूल से मुक्त हुए बिना चेतना का दर्शन नहीं हो सकता। यह सब धूल हमारा अतीत है और अतीत से हमारा गहरा संबंध है अतः द्रोणाचार्य व कृपाचार्य को मारना अनिवार्य है। ये अज्ञान के समर्थक हैं। विदुर का आशय विवके से है– विवके भी उसी वशंज का है लेकिन वह उस पक्ष के कृत्यों में साथ नहीं देता। वह पाण्डुओं का साथ देता है। युद्ध में उसकी भूमिका नहीं है।

अतः हम अतीत से संबंध तोडेगे तब ही उस चेतना को देख पाएंगे महाभारत में कर्ण महान नायक कहलाता है। हमारे में शुरू से सुनने की क्षमता न हो तब हम गूंगे ही रह जाएगें। हम जो कुछ जानते है व समझते है उसमे कर्ण का बहुत महत्व है। इनका होना भी अनिवार्य हैं। सूनने व देखने से ही ज्ञान यानि धूल जमा होती है। इसलिए हमारे दर्पण पर धून जमा होनी भी स्वभाविक है और अनिवार्य भी। धूल जमा होने पर ही हम धूल को हटा सकेगे वरना क्या हटाएंगे ? इसलिए महाभारत का महानायक कर्ण है।

चेतना को जानने व देखने की यही घटना है कि स्वंय को यानि खुद को जानने के लिए दूर की यात्रा करनी पड़ती है। दूर जाकर ही वापस आना है। देखने के लिए दूरी आवश्यक है। धूल जमा कर धूल को हटना ही धर्म है।

खुद को जानना खुदा कहलाता है। बात बहुत छोटी सी है लेकिन बहुत बड़ी भी है। सारे विश्व के लिए यह रहस्य बना हुआ है। ऐसा ही है कि चिमटा स्वयं चिमटे को कैसे पकड़े ? हाथ स्वयं हाथ को कैसे पकड़े ? हम सब दूसरों को देखते हैं। सब कुछ जानते हैं लेकिन स्वयं को देखने व जानने में असमर्थ है हम दूसरो को सुनते हैं स्वयं को सुनने में असमर्थ हैं। दूसरों को देखने व जानने में समर्थ हैं लेकिन स्वयं को देखने व

जानने में असमर्थ है। अर्जुन को युद्ध के समय में उपदेश दिया गया जहां फौजे तैयार खड़ी होती है। दसवें अध्याय में कृष्ण ने अपना विराट रूप दिखलाया तब अर्जुन को श्रद्धा पैदा हुई और महाभारत के लिए तैयार हुआ। यह स्वयं को देखना हुआ।

युद्ध के समय में अर्जुन का रथ श्री कृष्ण हाकते है। लेकिन हम अपना रथ स्वयं हाकते हैं। हम कृष्ण के भरोसे नहीं छोड़ते, कृष्ण हमारा यानि सबका मित्र है परन्तु हम उस पर कुछ नहीं छोड़ते, जो कुछ करना होता है वह स्वयं ही करते हैं क्योकि हमारे अतीत ने हमें यही सिखाया है। हम बहुत सोच विचार करते है यह हमारी पुरानी आदत है। कहते हैं कि सोच विचार से ही आज मानव बहुत तरक्की कर गया हैं। परन्तु यह सत्य नहीं है, सत्य जैसा भासता है। इन सभी पौराणिक कथाओं में सिर्फ एक छोटी सी बात ही कही गई है कि अतीत से पूरी तरह टूट जाए। लेकिन अतीत हमारा बहुत बनवान है।

कृष्णलीला में जरासंघ ने कृष्ण पर बार बार हमला किया परन्तु हारा नही। आखिर कृष्ण को ही मथुरा छोड़नी पड़ी और द्वारका बंसाई इसलिए कृष्ण को रणछोड़ भी कहते है कि रण में भाग गया था। जरा का आशय पुराने से है अतीत से है। संघ का मतलब तादात्म्य से, संबंध से है। कृष्णलीला हमारे कारण शरीर की कहानी है। जरासघ हमारे पूर्व जन्मों के कर्मो से है। कारण शरीर हमारी वासनाओं का परिणाम है। सूक्ष्म शरीर उसका बड़ा आकार है। दोनों का परिणाम ही हमारा स्थूल शरीर है स्थूल शरीर चाहे मानव का हो या पशु सब इन दोनों का परिणाम है। ये वासनाओं के पुंज हैं जिस प्रकार सूक्ष्म शरीर में सात केन्द्र होते है उसी प्रकार शरीर में भी सात केन्द्र होते है कारण शरीर वासनाओं का केन्द्र है इसलिए कृष्णलीला में वासनाओं को वासुदेव कहा है और वासुदेव की पत्नी देवकी। देवकी का आशय हमारी अन्तर चेतना की समझ से है। सुप्रीम बुद्धि से है। पौराणिक कहानियों में बुद्धि का आशय पत्नी से व ज्ञान का आशय पुत्र से है। वासुदेव के सात पुत्र कंस ने मार डाले और आठवें कृष्ण पैदा हुए। जब हमारे कारण शरीर के सातों केन्द्र खाली हो जाते है तब सुप्रीम एनर्जी हमारे भीतर पैदा होती है उसे ही कृष्ण कहा है। सुप्रीम एर्नेजी हमारे भीतर पैदा होते ही धीरे–धीरे सब कयाश समाप्त हो जाते है। फिर हम सिर्फ एक उर्जा का समूह मात्र रह जाते है वही ईश्वर परमात्मा या परम जो इस शरीर में द्रस्टा की तरह हो जाता है।

जो कृष्णलीला व महाभारत दोनों अलग–अलग कहानियां है। जो एक सूक्ष्म शरीर की और दूसरी कारण शरीर की। परन्तु रामायण में दोनों मिश्रित हैं। रामायण श्रवण कुमार से शुरू होती है श्रवण कुमार के माता–पिता अन्धे होतें हैं श्रवण का मतलब सुनना होता है। हम सुन–सुन कर ज्ञान इक्कठा करते है वही अन्धे मां–बाप की तरह प्रिय है। बाहर से लिया ज्ञान अन्धे की तरह होता है। दशरथ वह होता है जो श्रवण कुमार को मार डालता है तब अन्धे मां–बाप भी मर जाते है। रामायण में आगे इसे कुभकर्ण का प्रतीक देकर कारण शरीर के बारे में बताया है दशरथ का आशय उस शक्ति से है जो हमारे अस्तित्व से हमारे शरीर की दस इन्द्रियों के मुखों तक आती जाती रहती है दशरथ का आशय दो ऑख, दो कॉन, दो नाशिका, एक मूंह, स्पर्श, जनेन्द्रीय व गुदा द्वारा हुए। ये द्वार हमारे अस्तित्व ये जुड़े हैं और दस है। हम किसी वस्तुको स्पर्श करते है तब हमारे केन्द्र तक वह स्पर्श इतना तेज गति से प्रवाहित होता है कि हम उस जाति को नही माप सकते। इसी तरह देखना, सुनना आदि सभी क्रियाएं इतनी तेजी से परिधि सं केन्द्र की तरफ गति करती है कि हम उस गति को माप नहीं सकतें। यही उर्जा दशरथ हैं। शरीर के दस अंगों के मुख परिधि से केन्द्र तक जुडे हैं। इन्ही मुखो को रावण कहा है। मुखों से केन्द्र तक जो ऊर्जा चलती है वही दशरथ है ये दो पक्ष रामायण मे है। रावण राक्षस परिवार का है परन्तु ब्राहम्ण कहलाता है। बहुत शक्तिशाली है। यह वही कारण शरीर व सूक्ष्म शरीर की बात है कि रावण को कैसे मारा जाए हमारे शरीर में सारे प्रोग्राम व कर्म नाभि में निहित होते है। यदि रावण को मारना है तो नाभि केन्द्र को नष्ट करने पर ही हमारी शक्ति यानि सीता स्वतन्त्र हो सकती है।

दशरथ के तीन रानियॉ कैकई यानि कुबुद्धि, कौशल्या यानी कौशल बुद्धि सुमित्रा यानी सम बुद्धि। वाल्मीकि जी ने बुद्धि को तीन भागों में कहानी के रूप में दशरथ की रानियां बताई। मंथरा दासी भी उन तीनो की सहयोगी है इसलिए चारो को बुद्धि का आशय दिया है।

यदि आदमी स्वयं साधना की ओर बढ़ता है तब स्वग्र के भीतर रामायण व महाभारत जैसा स्वतः ही घटने लगता है। भीतर जो घटना घटती है ठीक उसी प्रकार बाहर भी घटने लगती है क्योंकि जो बाहर है वही भीतर है और भीतर है वही बाहर है।

वेद व्यास जी और वाल्मिकी जी की अनुभूतियॉं में अन्तर प्रतित होता है लेकिन सार एक ही है।

बाबा रामदेव की कथाओं में व गौरखनाथ जी की कथाओं में भी अनुभूतियां अलग–अलग तरीके से दर्शाई गई है लेकिन सभी का सार एक ही है। सभी ने कहने के ढ़ग अलग लिए है।

गोरखनाथ जी की कहानी में सभी पात्रों के पीछे नाथ लगाया गया है। गोरख का आश्रम उस ऊर्जा से है जिसे गोवर्धन, गोपाल, गोविन्द आदि नामों से पुकारा गया है। गौ का मतलब गाय से भी है। यह प्रतीक महाभारत में भी है और अन्य सभी कहानियों में भी मिलेगा। गोरखनाथ के गुरू मच्छेन्द्र नाथ थे। मच्छेन्द्रनाथ का आशय मन की इच्छाओं के समूह से है। मच्छेन्द्रनाथ कामरूप देश में जादूगरनियों के चुगल में फसे हुए थें। वे जादूगरनियां मच्छेन्द्रनाथ को रात में गधा बना देती और दिन में चक्की चलवाती थी। यह कहानी गोरखनाथ जी है। बस यही हाल सामान्य आदमी का है। आदमी सुबह उठता है ज्योही ऑख खुलती है सोचना विचारना शुरू हो जाता है और रात को जब तक हम सोते नहीं है तब तक हमारा यही हाल रहता है। और सोने के बाद हम गधे की तरह हो जाते हैं। दिन में विचारना एक आटा–पिसने की चक्की भांति है। यहां शुरू कर देते हैं। कहानी में कामरूप देश से आशय,जिसे महाभारत में कुरूक्षेत्र कहा गया है। दोनों का एक ही आशय है। सोच–विचार मनुश्य की परम आवश्यकता है परन्तु धर्म के लिए वर्तमान में रहना होता हैं क्योंकि बिना कामना के बिना किसी चाह के विचारना नहीं होता है। चाह व कामना का मतलब इतना ही है कि आदमी अतीत के आधार पर भविश्य में डालता रहता है। भविश्य कभी नही आता। आता हमेशा वर्तमान ही है। लेकिन हम कभी वर्तमान में नहीं होते है।

हमारे भीतर जो एनर्जी है जो ऊर्जा है, उसे काम भी कहा है। संभोग सर्वाधिक काम है। इसमें सबसे ज्यादा ऊर्जा क्षीण होती है। काम से कामनाएं बनती है। हमारे शरीर की ऊर्जा दो तरह से बह सकती है एक बाहर की तरफ, दूसरा रास्ता भीतर की तरफ का भी है। जब ऊर्जा बाहर की तरफ बहती हो और रास्ते में कोई बाधा आ जाती है तब आदमी हिंसक हो जाता है। यदि बाहर बहती ऊर्जा सफल हो जाए तो आदमी परिग्रही बन

जाता है। यदि आदमी स्वयं की हीन भावना के कारण बाहर बहती ऊर्जा के असफल होने पर आदमी चोर बन जाता है। ये सारे कृत्य बाहर बहती हुई ऊर्जा के हैं।

यदि ऊर्जा भीतर कर तरफ गति करे तब धर्म का काम शुरू होता है। बस इसी को ही महाभारत– रामायण व बाबा गोरखनाथ आदि की कहानियों में दर्शाया गया है कि भीतर की ऊर्जा कैसे बहे और फिर उसके क्या परिणाम होंगे।

महाभारत में युद्ध हुआ था। रामायण में भी युद्ध हुआ था। जिसमें तीर चले थे। जैसा हम धनुश व तीर को समझते है वैसा नहीं था। हमारे मूंह के ऊपर वाला होठ धनुश के आकार का है। धनुश को खींचने का मतलब मूंह खोलना और कुछ बोलना होता है। यहाँ तीर व बाण का आशय वाणी से है। एक छोटा सा वाक्य आपके दिल दिमाग में आग लगा सकता है। ये बाण व तीर महाभारत व रामायण में थे जिसे अग्नि बाण व पुष्पक बाण कहे जाते हैं। धार्मिक पुरूषों का मात्र यही आशय होता है कि मात्र शब्द यानि वाणी से मनोस्थिति बदल देते हैं। रावण को मारना कंस, जरासंघ आदि को मारने का मतलब ये सब हमारे भीतर की अनेक जन्मों–जन्मों की वासना व अतीत से आशय है।

हमारी भाषा में शत्रु को दुश्मन कहते हैं। दुश्मन का मतलब ही दुषित मन से है। आपका कोई दुश्मन नहीं है सिर्फ आपका मन दुषित है। अपने स्वयं के मन को ठीक करने का प्रयास ही धर्म है। दुश्मन को मारना और कैसे मारना ? ये स्वयं के प्रति कहा गया है। किसी के शरीर को क्षति पहुंचाना धर्म का काम नहीं है। शरीर सभी के समान है अन्तर सिर्फ मनःस्थिति का है। इसलिए महाभारत व रामायण के युद्ध शारीरिक नहीं थे। शारीरिक होने पर तो फिर हिंसा शुरू हो गई।

आज विज्ञान ने बहुत से आविष्कार किए हैं लेकिन विज्ञान कोई नई चीज पैदा नहीं कर सका है। इस प्रकृति में सब कुछ पहले से मौजूद है। विज्ञान सिर्फ डिसकवर (खोज) करता है। चीजें पहले से मौजूद है। भाप की खोज की बिजली की खोज की आदि। परन्तु ये सभी पहले से मौजूद थी, विज्ञान ने सिर्फ खोज कर उपयोग में ली है। वैज्ञानिक को स्वयं को पता नहीं है कि भाप क्या है ? बिजली क्या है? वैज्ञानिक व आप सिर्फ इनके परिणाम जानते हैं परन्तु भाषा व बिजली क्या है? आज विज्ञान को भी पता नहीं है।

वैज्ञानिक प्रकृति की खोज करता है। पश्चिम का वैज्ञानिक प्रकृति पर विजय पाने का यत्न करने में जुटा है। परन्तु परमात्मा की खोज हमेशा पूर्व करता है। यहां पूर्व का आशय भारत से है। साधन भी परमात्मा पैदा नहीं कर सकता। परमात्मा भी पहले से ही यहां मौजूद है। सिर्फ डिसकवर (खोज) करता है। हमारे धार्मिक शास्त्रों में सब कुछ भरा पड़ा है। उच्च कोटि के तर्कों व प्रतीको से समझाया गया है। उस समझ से ही परमात्मा तक पहुंचा जा सकता है।

हमारे धार्मिक शास्त्रों में बहुत ज्ञान भरा पड़ा है। परन्तु उसे समझा कैसे जाए? कौन समझेगा? शास्त्रों से आशय हमारे धार्मिक ग्रन्थों व पौराणिक कथाओं से है।

"शास्त्र का मतलब तर्क युक्त ढंग से विचारों के जमाव को हम शास्त्र कहते है। तब विचार किसे कहते हैं ?"

शब्दों के जोड़ को जो अर्थबता लिए होते है। हम उन्हें विचार कहते है। तब फिर शब्द किसे कहते हैं ?

वे ध्वनियां जिसे हमारी सबकी सहमति होती है। उसे हम शब्द कहते हैं। तब फिर ध्वनि किसे कहते हैं? ध्वनि हमारी भावनाएं हैं। ध्वनि हमारे केन्द्र की आवाज है। आत्मा की आवाज है। अतः धार्मिक साधक पहले केन्द्र पर जाएगा और केन्द्र पर जाने पर सब जान जाता है जो इस जगत में जानने योग्य है। फिर जानने के लिए कुछ नहीं बचता है।

हम भाषा के माध्यम से एक दूसरे को समझते हैं। लेकिन भाषा परिपूर्ण नहीं है। भाषा सिर्फ काम चलाऊ है। यह हमारे व्यवहारिक क्रियाओं में काम आती है। यदि भीतर की शक्तियों को जानना हो तो पहले भीतर स्वयं में प्रवेश करना होगा तभी भाषा का सही अर्थ जान पाओगे। ऐसे प्रत्येक शब्द व अक्षर का अर्थ व गुण धर्म होता है। क्योंकि भाषाएं सब धार्मिक होती हैं। परन्तु अपनी क्षैत्रीय भाषा ही सबसे ज्यादा कारगर होती है।

आज अंग्रेजी भाषा अर्न्तराष्ट्रीय स्तर की है। संस्कृत व हिन्दी भारत की भाषा है। इसके अलावा क्षैत्रीय भाषाएं अनेक हैं। मेरी क्षेत्रीय भाषा मारवाड़ी राजस्थानी है। जिसे बानीका भी कहते हैं। अब किसी शब्द का सही अर्थ समझने के लिए मुझे मेरी क्षैत्रीय भाषा

व अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत सभी का विश्लेषण करना होगा। तभी शब्द के सही तथ्य को समझा जा सकता है।

मैं अखबार में डॉ. फतेहसिंह का लेख पढ़ रहा था। उस लेख में विश्वामित्र शब्द का सन्धि विच्छेद करके विश्वामित्र का अर्थ समझाया गया था। उनका कहना था कि विश्व+अमितत्र यानि विश्व का मित्र। परन्तु यह अर्थ गलत है। फिर भी कहने वाला लेखक डॉक्टर है। पी.एच.डी. हिन्दी साहित्य में किए हुए हैं इसलिए गलत नहीं हो सकती हैं। परन्तु गलत हैं। मैंनें अपने एक मित्र को अमितत्र का अर्थ न शत्रु होना और न मित्र होना समझा। जैसे मर के आगे अ लगाने से अमर हो जाता है। अमर का मतलब न मरना न जन्मना। सल के आगे अ लगाने पर असल बन ज़ाता है। असल का अर्थ होता है मूल में– यानि न खरा व न खोटा। ज्ञान के आगे अ. लगाने पर अज्ञान बनता है अज्ञान का अर्थ होता है न उसमें ज्ञान है और न विज्ञान। मूल्य के आगे अ लगाने पर अमूल्य बनता है जिस का अर्थ कोई मूल्य नहीं है। अतः विश्वामित्र का अर्थ हुआ न शत्रु और न मित्र। रामायण में विश्वामित्र ने राम व लक्ष्मण को प्रशिक्षित किया था। राम का अर्थ सुप्रीम ऐनेर्जी से और लक्ष्मण का आशय उस मन से है जो लक्ष्य के साथ है, सुप्रीम के साथ है। विश्वामित्र राम लक्ष्मण, जैसे आप व्यक्ति समझ रहे हैं ऐसे कभी नहीं हुए। यह सब वाल्मीकि जी की अभिव्यक्ति जो उन्होंने सही प्रतीकों को के रूप में जो "सत्य कहा नहीं जाता है" उसे कहा है। विश्वामित्र का आशय न्यूटरल से है। वीतराग स्थिति से है। सुप्रीम जब पैदा होता है तब विश्वामित्र की स्थिति बन जाती है।

अभी जो समय है उसे कलयुग कहा गया है। कहते है। कि कलयुग में धर्म का अभाव होता है। इसलिए भ्रष्टाचार, मारकाट, रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, व्यभिचार आदि कलयुग में अति पर है। कलयुग का आशय होता है कि अधार्मिक समय। हम हिन्दी व मारवाड़ी में "कल" गये दिन को व आने वाले दिन को कहते हैं। कल का मतलब बीता हुआ समय व कल का मतलब आने वाला समय भी। इस समय प्रत्येक आदमी भूतकाल व भविष्य में रहता है। धार्मिक व्यक्ति वर्तमान में रहता है। अभी धार्मिक व्यक्ति मिलना असंभव सा हो गया है। इसलिए अभी का समय कलयुग है। क्योंकि कल में इस समय सभी रहते हैं। इसलिए इसे कलयुग कहते हैं।

आज हर व्यक्ति अपने अतीत से जकड़ा हुआ है। अतीत से जो कामनाएं व आकाक्षाएं बनती है जो भविष्य में होने वाली है उसके लिए आज का मानव पीड़ित है। प्रत्येक व्यक्ति भयभीत है। क्योंकि हमने जो भी ग्रहण किया है, हमें जो समाज व व्यवस्था ने हमें सिखाया है वह भी अतीत ही है परन्तु यह सब अधार्मिक की पहचान है। सोच विचार अधार्मिक की पहचान है। सोच विचार हमेशा भूत व भविष्य का हो सकता है। वर्तमान क्षण का कोई विचार नहीं हो सकता है। भूत भविष्य में कोई अन्तर नहीं है इसलिए हमारी भाषा में दोनों को कल नाम दिया है। अब यदि आप इन दोनों कल से बाहर हो जाएं तब आप वर्तमान में होंगे और आपका कदम धर्म की ओर होगा। वर्तमान में रहने से क्या होगा?

वर्तमान में रहने से बहुत बड़ी शक्ति हासिल होती है। ज्ञान पैदा होता है। कल के आगे अ लगाने से अकल बन जाता है। अकल का तात्पर्य सद्‌बुद्धि ज्ञान से है। यदि आप भूत भविष्य में नहीं होंगे तब आप स्वयं में अकल आ जाएगी। ध्यान का मतलब ही वर्तमान में होना होता है। ध्यान को अंग्रेजी में मेडीटेशन कहते हैं। और दवा को मेडिशन। मेडिशन शरीर को स्वस्थ बनाती है। मेडिटेशन यानि ध्यान आप स्वयं को स्वस्थ बनाता है। आप केवल शरीर नहीं हो। आप चेतना भी हो। जो इस शरीर में साथ–साथ रह सकती है। इस शरीर में चेतना घुलमिल नहीं सकती साथ रह सकती है। इसलिए अपने को ध्यान के द्वारा जानना इस शरीर के माध्यम से संभव है। परन्तु आज कलयुग में प्रत्येक व्यक्ति का अतीत से तादात्म्य है। उस चैतन से नहीं जो सदा मौजूद है।

भाषा से हमें सिर्फ संकेत मिल सकते हैं। राजस्थानी यानि मारवाड़ी भाषा, सभी भाषाओं को समझने के लिए सरल है। हमारी मारवाड़ी भाषा में लिखते समय व्याकरण का प्रयोग नहीं होता था। लगमात्राएं नहीं लगाई जाती थी। आधे अक्षर नहीं होते थे। जैसे श्मशान लिखना होता है तब समसन ही लिखते थे। उसे श्मशान समझना पड़ता था। यहां सम का अर्थ बराबर है तब श्मशान का मतलब हुआ वह स्थल जहां सब शरीरों की शान बराबर होती है। इसलिए मारवाड़ी भाषा में हिन्दी की भांति तीन श ष स नहीं होते थे। इसका मतलब यह नहीं था कि मारवाड़ी भाषा जानने वाले व्याकरण नहीं जान सकते थे। व्याकरण से ज्यादा उलझन पैदा होती है। अब यदि किसी शब्द का अर्थ समझना हो तो उसकी लगमात्राएं हटाकर फिर उसका अर्थ समझने की कोशिश करें तब कई शब्द

आसानी से संकेत दे जाएंगे। इसी प्रकार संस्कृत व अंग्रेजी शब्दों को भी हिन्दी व मारवाड़ी शब्दों की सहायता से समझा जा सकता है और कई शब्दों को जो हिन्दी मारवाड़ी के है, सही अर्थ समझने के लिए अंग्रेजी शब्दें से समाझा जा सकता है। जैसे हिन्दी का शब्द विद्वान। विद्वान का अर्थ हिन्दी भाषा में उच्च स्तर का माना जाता है परन्तु अंग्रेजी में विद्वान कासे लरनेड कहते हैं। लरनेड का आशय सिखा हुआ। बाहर से फीड़ किया हुआ। जैसे कम्प्यूटर में फीड करने के बाद फिर से वही ज्ञान बाहर आता है। आज भारत में विद्वानों की कमी नहीं है। परन्तु फिर भी अव्यवस्था चरम सीमा पर है। इसलिए कि ज्ञान का अभाव है। सीखा हुआ ज्ञान सिर्फ सूचनाएं होती हैं, सूचनाएं कभी सत्य नहीं होती। ज्ञान तो स्वयं से ही पैदा होता है। स्वयं के ज्ञान के बिना शुभ होना कुछ भी संभव नहीं है। और स्वयं का ज्ञान ध्यान से पैदा होता है। वर्तमान में रहने से पैदा होता है जो सब के लिए उपयोगी है।

हमारे स्वयं से पैदा हुआ ज्ञान जैसा किसी भाषा द्वारा नहीं आता है। हम भाषा से ढाल सकते हैं। वह प्रत्यक्ष ही सामने आता है। राजस्थान प्रान्त में करीब पांच सौ वर्ष पूर्व बाबा रामदेव हुए। उनहें विष्णु का अवतार राम व कृष्ण की तरह माना जाता है। उन्होंने ज्ञान किसी को नहीं दिया। हां वे डॉक्टर जरूर थे जिसे आज पी.एच.डी. किए हुए को डॉक्टर की उपाधि देते हैं। उसी प्रकार के वे डॉक्टर थे। वे अन्धों को आंखें देते थे। जिनके पांव नहीं थे लूले लंगड़े थे उन्हें वे पांव देते थे। जिनके कोढ़ होती थी उनकी कोढ़ भी ठीक करते थे।

सत्य का सीधा व साफ नियम है कि जासे जितना स्वयं को जानता है उतना दूसरे कासे जान सकता है। जो स्वयं का मालिक बन जाता है वह सबका मालिक बन जाता है। स्वयं को जितना दिखाई देता है उतना ही आप दूसरे को देख सकते हों। यदि मै। आपके सामने खड़ा हूँ आप मूझे नहीं देख सकते। आप मेरा शरीर ही देख सकते हैं, क्योंकि आप को अपना शरीर ही दिखाई देता है। इसलिए दूसरे का शरीर ही देख सकते हैं। आप दूसरे को तभी देख सकते है। जब आप स्वयं को देख सको। जब मै। आपके सामने खड़ा आपको दिखाई नहीं देता। तब जिसे दिखाई नहीं देता उसे अन्धा ही कहा जाएगा। इसलिए बाबा रामदेव जी का कहना ठीक था कि मै अन्धों को आँखे देता हूँ। उन्होंने ज्ञान देने की बात नहीं कही। उन्होंने भाषण नहीं दिये उन्होंने सिर्फ आंखें देने की बात कही है।

क्योंकि ज्ञान नहीं दिया जा सकता। आंखें दी जा सकती है। जब आंखें होगी तब स्वयं प्रकाश दिख जाएगा। वेदव्यास जी ने महाभारत में कृष्ण के द्वारा अर्जुन को नौ अध्याय तक का ज्ञान दिया था परन्तु अर्जुन को फिर भी शंका थी, श्रृद्धा पैदा नहीं हुई थी। जब दसवें अध्याय में कृष्ण ने विराट रूप दिखाया था तब अर्जुन पूरी तरह आश्वस्त हुए थे। यानि स्वयं द्वारा स्वयं को देख लेने पर ही बाहरी ज्ञान को फैंका व त्यागा जा सकता है।

इसलिए ही हमारा जो भी ज्ञान, अनुभव स्मृतियां सब धूल के समान हैं उसे बाहर फैंकना होगा। इसका यह आशय नहीं है कि बाहर का ज्ञान न लिया जाए। यदि बाहर से ज्ञान नहीं लेंगे तब बाहर फैंकेंगे क्या? इसलिए बाहरी ज्ञान अनिवार्य है। उसे प्राप्त करना होगा और फिर उसे त्यागना होगां यही धर्म की प्रक्रिया है। इसलिए वर्तमान में रहने के लिए हजारों विधियां बताई गई है। परन्तु इस समय में कोई भी इसे क्रियात्मक रूप नहीं देता। सबके सब दूसरें के पांवों पर खड़े हैं। स्वयं के पांव का आशय ही स्वयं के ज्ञान से है। इसलिए धर्म का क्षेत्र विशाल है उसे हर किसी धार्मिक व्यक्ति ने कहने का प्रयास प्रतीकों में कहा है। जैसा हम अर्थ समझते आ रहे है। उस प्रकार के नहीं हैं क्योंकि उस सत्ता के प्रति जो कहा गया है वह प्रतीकासें में ही कहा गया है।

क्योंकि सत्य को कहने का और कोई साधन नही है। इसलिए धार्मिक लोगों ने सत्य को कहने के लिए चित्रों की भाषा का प्रयोग किया है। चाहे कहानी किसी धर्म संगठन की क्यों न हो– वह घटना की तरह नहीं होगी। हमारी सभी भाषाएं धर्म की देन है। भाषा की विशालता की वजह से कानून ने अपना दायरा सीमित कर लिया। प्रत्येक शब्द जो कानून की परिभाषा में आता है। उसे कानून विशेषज्ञों ने पहले निश्चय कर लिए ताकि उसके बाहर न जा सकें और वही उस शब्द का आशय होगा जो कानून में निर्धारित है। जैसे चोर व चोरी की परिभाषा निश्चित है परिभाषा की शर्तों का पूरा करने पर ही चोरी व चोर कहा जाएगा। परन्तु धार्मिक परिभाषाएं विशाल है। हिंसक होने पर ही परिग्रह बन जाता है बिना हिंसक हुए आप चीजों को या मान समान को एकत्रित नहीं कर सकेंगे। हिंसक हुए बिना परिग्रह होना असम्भव है। यदि परिग्रह पागल हो जाता है तब चोरी का जन्म होता है। अस्वस्थ परिग्रह यानि चोरी। चोरी में दूसरे की चीजें भी अपनी दिखाई देने लगती है, हाँ दूसरा अपना दिखाई नहीं देता परन्तु उनकी चीजें, अपनी दिखाई देने लगती हैं। चोरी का आशय धार्मिक दृष्टि से– कि जो मेरा नहीं है उसे मैं मेरा घोषित करूं। यह

शरीर मेरा नहीं है लेकिन मेरा घोषित करता हूँ चोरी हो गई। शरीर आपका नहीं है। शरीर हाड मांस का बना है जिसमें पानी, हवा, अग्नि, आकाश, पृथ्वी की मात्रा है। आपका कुछ नहीं है लेकिन बिना अधिकार के दावा करते है। इसलिए पागल हैं। क्योंकि यह शरीर तो हमें मिला है परन्तु अपना नहीं है। इतना ही नहीं हम दूसरों के विचारों को अपने ही विचार कहते हैं चोरी है। हम दूसरों की तरह ही बनना चाहते हैं हम व्यक्तित्व की भी चोरी करते हैं इसलिए चोर हैं। इसलिए कानून ने प्रत्येक शब्द की परिभाषा अपने हिसाब से पहले निश्चित कर रखी है। परन्तु धार्मिक भाषा विशाल है। कानून कोई सत्य नहीं है। कानून एक मान्यता है। व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। कानून भी सत्य खोजता है। कानून सत्य नहीं है मगर सत्य खोजता है।

संसार की व्यवस्था मान्यता पर आधारित है। हम मानकर ही सत्य का पता लगा सकता हैं। जीवन मरण मान्यता नहीं है सत्य है। परन्तु सत्य का पता मानकर ही लगा सकते हैं। बच्चे बीज गणित के सवाल करते हैं तब एक्स बराबर एक मानकर चलते हैं। प्रोसेस में एक चलता रहता है। जब नतीजा आता तब एक्स की वेल्यू फिर वापिस रखते हैं और सवाल हल हो जाता है। परन्तु हमारे जीवन का सवाल हल नहीं होता है। हम सभी चीजों को मानकर चलते हैं परन्तु उस वेल्यू को वापिस नहीं रखते। यदि मानी हुई वेल्यू वापिस रख दें तब हमारे जीवन का सवाल हल हो जाता है। सिर्फ मान्यता की वेल्यू को वापिस रखने के लिए हमारे धार्मिक शास्त्रों में अनेकानेक उपाय बताए हैं। परन्तु फिर भी आज का मानव सफल नहीं हो रहा है।

अभी कलयुग है। युग चार कहलाते हैं। जो भूत भविष्य व वर्तमान से बाहर हासे जाता है वह सत्ययुग है। वह युग भी था कि प्रायः सभी सत्य को प्राप्त करते थे। उसे सत्ययुग कहते थे। द्वापरयुग का आशय वर्तमान में होना व उससे बाहर भी होना होता है। त्रैतायुग का आशय वर्तमान में होना, वर्तमान व कल से बाहर होना व कल से भी होना होता है। अभी वर्तमान युग कलयुग कहलाता है। क्योंकि सब कल से जुड़े हैं। वाल्मिकी जी सत्ययुग में हुए वाल्मिकि का आशय बाल की खाल निकालना। खाल निकालने वाले को शेड्यूल कास्ट का कहते हैं। डाकू थे इसलिए कि सिर्फ कलम से लूटते थे। वेद व्यास का आशय हमारे शरीर से है। ये सभी नाम शरीर के गुण धर्म के आधार पर दिए हुए हैं।

वेद व्यास जी साधक थे और द्वापर युग में महाभारत लिखी। वैद व्यास जी ने महाभारत में कारण शरीर को सुप्रीम एनर्जी को कृष्ण नाम का पात्र नाम दिया और गीता उस सुप्रीम एनर्जी के द्वारा कही गई है। गीता के श्री कृष्ण ने चौथे अध्याय में कहा है किः–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदत्मानं सुजाम्यहम ।।7।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसुस्थापनार्थय संभवामि युगे युगे ।।8।।

हे भारत। जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है। तब–तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ। साधू पुरूषों का उद्धार करने के लिए और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिए तथा धर्म स्थापना करने के लिए युग–युग में प्रकट होता हूँ।

कलयुग में धर्म लुप्त हो जाता है, लुप्त होना नष्ट होना नहीं होता है। अन्धेरा घना होता तब प्रकाश की जरूरत पड़ती है। और धर्म की किरण कहीं से फूटती है। जब भी अधर्म बढ़ता है वह भी हमारे सहारे व हमारे में ही बढ़ता है। जब धर्म को उठना या बढ़ना होता है वह भी हमारे सहारे व हमारे में ही बढ़ता व उठता है। धर्म व अधर्म अकेला नहीं बढ़ सकता। धर्म के लिए पवित्र हृदय चाहिए। अधर्म के लिए अपवित्र हृदय चाहिए। जब धर्म होता है तब साधु चाहिए जब अधर्म होता है तब दुष्ट चाहिए। अतः कृष्ण घोर अन्धकार में प्रकट होते हैं। होते हमारे में ही है परन्तु अधर्म जब अति पर होता है तब उन्हें प्रकट होना होता है।

जब कृष्ण प्रकट होते हें, यहां कृष्ण का आशय सुप्रीम ऊर्जा से है जो पवित्र हृदयों से प्रकट होती है, तब दुष्टों का विनाश व साधुओं का उद्धार होता है। यहां दुष्टों के विनाश का आशय किसी को मार डालने की बात नहीं है सिर्फ दुष्ट वृत्ति का ही नाश करना होता है। जब दुष्ट वृत्ति ही समाप्त हो जाए तब शेष जो बचता है वही धर्म होता है। साधुओं के उद्धार करने का मतलब साधुओं के कल्याण से नहीं है। क्योंकि जब अधर्म

पूरी तरह छा जाता है और धर्म लुप्त हो जाता है तब साधु नहीं होते हैं। जहां साधू होंगे वहां धर्म अवश्य होगा। परन्तु कलयुग में साधु नहीं होते है। साधुओं के वेष में कोई ओर है। साधु नहीं होते हैं। साधु तो स्वयं अपना कल्याण कर सकता है। परन्तु अधर्म के समय में साधु नहीं होते सिर्फ पाखण्ड होता है। साधुओं के नाम पर पाखण्ड चलता है। सिर्फ उस पाखण्ड से मुक्त करने की बात कृष्ण कहते हैं। साधुओं के कल्याण के आशय साधुओं की छुट्टी हासे जाएगी। लेकिन ऐसा समझा नहीं जा रहा है।

अतः मेरा निवेदन है कि समझ आवश्यक है। ज्ञान व समझ में अन्तर है। ज्ञान बाहर से आता है समझ स्वयं से पैदा होती है। समझ वर्तमान में रहने से आती है और वर्तमान में रहने वाले को ही धार्मिक पुरूष कहा जाता है।

हम आदमी को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते है। एक सामान्य आदमी यानि सामान्य बुद्धि स्तर का। दूसरा वह आदमी जो सामान्य से नीचे गिर जाता है वह असामान्य कहलाता है। असामान्य सामान्य से नीचे गिर जाने वाले को कहते हैं। सामान्य से ऊपर चला जाता है वह भी असामान्य ही होता है। यदि बुद्धि स्तर से आदमी नीचे गिर जाता है तो उसे पागल यानि बुद्धू कहते हैं। यदि सामान्य से ऊपर चला जाता है व हभी होता तो सामान्य नहीं है उसे अधि–सामान्य कहा जा सकता है। यानि बुद्धि स्तर से ऊपर चला गया उसे बुद्ध कहते हैं। यानि बुद्धि के तीन स्तर हो सकते हैं। सामान्य बुद्धि से नीचे गिरने पर बुद्धू और ऊपर निकल जाने पर आदमी बुद्ध कहलाता है।

पश्चिम का सारा सोच, पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों का सोच बुद्धू यानि असामान्य बुद्धि स्तर की जांच के आधार पर है। मनोचिकित्सकों के पागल आदमी का परीक्षण कर करे मनोयोग का निदान निकाला है और अपनी धारणा बनाई है। वह सत्य नहीं है उनका सारा सोच बीमारी पर आधारित है। पागलपन पर आधारित है। क्योंकि उनहें अधिसामान्य यानि बुद्ध जैसा बादमी नहीं मिला। हमारे कबीर, महावीर, मीरा, बुद्ध जैसे लोग उन्हें नहीं मिले। ऐसे लोगों का अध्ययन करने का मोका उन्हें नहीं मिला। इसलिए पश्चिम का समाज नीचे गिर गया क्योंकि उनका आधार रूग्ण मनुष्य पर आधारित है। चित्त की एक विशेष दशा चुनी जाती है और वह रूग्ण हो तब सारा सोच ही रूग्ण होगा। इसलिए सारे पश्चिम का सोचना है कि भारत का धर्म अन्धविश्वास पर आधारित है। उन्हें सारी पौराणिक कथाएं

कपोल कल्पित लगती हैं परन्तु इस समय स्वयं भारत ही भूल गया कि हमारी पौराणिक कथाएं क्या है? वह स्वयं ऐतिहासिक घटनाएं की तरह मानता है।

पौराणिक कथाओं और पातांजली योग दर्शन में अन्तर नहीं है। दोनों एक ही समस्या का वर्णन करते हैं। हिन्दू व मुस्लिम धर्म दो नहीं है। ना समझी के कारण दो भासते अवश्य हैं परन्तु दो नहीं हैं, दोनों का अशय एाक ही है। लेकिन इस कलयुग के समय में न हिन्दू अपने धर्म को समझ रहा है, न मुसलमान अपने धर्म को समझ रहा है। यदि अपने धर्म को समझ जाए तब वह अन्य सभी धर्मों को समझ जाता है। यदि मुसलमान अपने धर्म को समझ जाए तो वह सभी धर्मों को समझ जाता है।

धर्म कभी दो नहीं होते हैं। धर्म तो सभी का एक ही है। हमें धर्म सम्प्रदाय अलग–अलग दिखाई देते हैं। धर्म सम्प्रदायों व धर्म संगठनों से धर्म का कोई वास्ता नहीं है। जहां धर्म सम्प्रदाय होगा, वहां धर्म नहीं होगा।

हिन्दू धर्म की मानरूता है कि मरने के बाद पूर्नजन्म होता है परन्तु इस्लाम धर्म की मान्यता है कि मरने के बाद कोई जन्म नहीं होता है। दोनों बातें एक दूसरे के विपरीत लगती हैं। दोनों के भिन्न अर्थ निकलते हैं। परन्तु हिन्दू व इस्लाम धर्म के जन्म दाताओं के कथन गलत नहीं हो सकते। उनके आशयों को हिन्दू और मुसलमान समझ ही नही पाए इसलिए गलत दिखाई पड़ता है।

इसे समझने के लिए आपको मरने के शब्द की गहराई से अर्थ समझना होगा। मरने के आशय जैसा समझ रहे हैं उस प्रकार का नहीं है। मरने का आशय शरीर त्यागने से नहीं है। आदमी शरीर छोड़ गया उसे मरना नहीं कहा जा सकता। शरीर छोड़ने को हम देहान्त कह सकते हैं। देहान्त व मरने में अन्तर है, देहान्त का मतलब इस देह का अन्त हो गया है। मरने का आशय स्वयं के मरने से है। स्वयं जब तक नहीं मरता तब तक आदमी भिन्न शरीरों में भटकता रहता है। स्वयं का मरना अलग बात है। शरीर का मारना अलग बात है। स्वयं के मरने पर दुबारा जन्म नही होता है। इस्लाम धर्म ठीक कहता है कि मरने के बाद कोई जन्म नहीं। परन्तु मरने का अर्थ इस्लाम भी नहीं समझ पाया। स्वयं का मरना यानि मन का मरना ही मरना होता है। देहान्त में हम मरते नहीं हैं शरीर बदलते हैं। कई लोग अपने पूर्व जन्म की याद बता देते हैं। हिन्दम कहता है मरने पर जन्म फिर होता है

वह भी मरने का अर्थ नहीं समझा है कि मरना किसे कहते हैं ? हिन्दू कहते है। एक पूत्र होना चोहिए यानि जो मरने के बाद पिण्डदान कर सके। ज्ञान होने पर फिर शरीर नहीं पकड़ता वह पिण्डदान कर देता है। परन्तु पुत्र से पिण्डदान का क्या संबंध ? पुत्र तो हमारे शरीर के माध्यम द्वारा आता है, कहीं ओर से नहीं हम तो सिर्फ माध्यम होते हैं। पुत्र हमारे से नहीं जन्मता। हमारे भीतर से हमारी आत्मा से पुत्र नहीं जन्मता। पुत्र हमारे शरीर का हिस्सा हो सकता है, आत्मा का नहीं। पुत्र हमें मुक्ति नहीं दिला सकता है क्योंकि पुत्र स्वयं भी मुक्त नहीं होता है। मुक्ति उसे कहते हैं कि इस शरीर रूपी पिण्ड का दान। फिर वह कभी शरीर धारण नहीं करता और ऐसा तभी सम्भव है जब ज्ञान हो जाए।

हमारे धार्मिक लोगों ने पुत्र का मतलब ज्ञान से लिया है। ज्ञान होने पर स्वयं पिण्डदान हो जाता है। इसलिए पुत्र यानि ज्ञान आवश्यक है। हमारी प्राःय सभी पौराणिक कथाओं में पुत्र की समस्या को लेकर कहानियां कही गई हैं। राजा दशरथ के पुत्र नहीं था, बाबा रामदेव जी के पिता अजमलजी के पुत्र नहीं था। वासुदेव व शांतनु के भी पुत्रों की समस्याओं को पैदा कर कहानी कही है। पुत्र का मतलब ज्ञान से लिया गया है। ज्ञान का आशय भी दो तरह के होते हैं। बाहरी ज्ञान जो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। दूसरा ज्ञान जो भीतर से आता है। इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। इन्द्रियां मूढ़ है इसलिए बाहरी ज्ञान अज्ञान की तरह ही है। सत्य नहीं। इसलिए बाहरी ज्ञान को पुत्र बताकर मारना कहानियों में कहा गया है। सात पुत्रों को मारना यानि बाहरी ज्ञान जो हमारे सातों केन्द्रों में अर्जित है को फैंकना होता तभी भीतर का ज्ञान सम्भव है।

अतः हिन्दू व इस्लाम धर्म की धारणा ही क्या सभी धर्मों की धारणा एक ही है। परन्तु भिन्न प्रतीत इसलिए होती है कि यह भिन्न–भिन्न समय के अन्तराल में भिन्न तरीकों से बात कही गई है। परन्तु इनका आशय एक ही है। मरने पर फिर जन्म नहीं होगा लेकिन मरना होना चाहिए। हमारे यहां पुराने रिवाज थे कि मरने पर मृत्युभोज किया जाता था। मरना शरीर को छोड़ने की बात नहीं थी। मरने का आशय स्वयं के भीतर से सभी बन्धनां को तोड़ना होता है, मुक्त होना होकता है और उस मुक्ति पर भोज दिया जाता था। क्योंकि वह मरना एक बहुत बड़ा उत्सव था। तब भोज में पूरे नगर को भोजन करवाया जाता था परन्तु धीरे–धीरे आदमी के देहान्त पर भोज करने लगे। देहान्त होने पर कोई उत्सव की बात नहीं होती है। देहान्त होने पर घर के रोते चिल्लाते हैं। परन्तु मरने

पर खुशी होती है। देहान्त पर उत्सव भोज का क्या संबंध ? परन्तु आज भी कानूनी पाबन्दी के बाद भी देहान्त पर भोज होता है। क्योंकि आज मरता हुआ कोई दिखाई नहीं देता। आज कोई मरता नहीं परन्तु इस प्रथा को हिन्दु मुस्लिम दोनों मानते हैं।

साधन साधना में पूर्ण होने पर समाधित अवस्था में चला जाता है। वह अपने शरीर से निकलकर बाहर विचरण कर सकता है और वापिस शरीर में आ जाता है। यदि इस प्रकार के प्रयोग कर व शरीर से जब सदा के लिए मुक्त होता है और शरीर को हमेशा के लिए त्याग देता है तब वह अवश्य घोषणा करता है कि मैं अब समाधि लूंगा। लेकिन इससे पहले वह शरीर से बाहर निकलने का परीक्षण कर बताता है कि वह शरीर से बाहर निकलकर विचरण कर सकता है। जब शरीर से बाहर निकल विचरण करने पर भी उन्हें अब कोई किसी प्रकार की कमाना व आकांक्षा शेष नहीं है तब उसे शरीर से बाहर निकलकर विचरण करने में भी दिलचस्पी नहीं रहती है। तब वह समाधि की घोषणा करता है और वह जनसमूह के सामने शरीर को घोषणा के अनुसार त्याग देता है। तब मरना नहीं हुआ। वहां रोने चिल्लाने की बात नहीं हुई। वहां बहुत बड़े उत्सव की बात हुई। इसलिए पहले इस प्रकार से शरीर त्यागने पर उत्सव मनाए जाते थे लेकिन आज देहान्त पर भी उत्सव मनाया जाता है। इसलिए कि आज हिन्दू व मुसलमान दोनों अपने धर्म की मंशा को नहीं समझ पा रहे हैं।

भारतीय योग सारे विश्व में प्रसिद्ध हैं। परन्तु योग का आशय न समझने से योग मात्र शारीरिक कसरत रह गया है। महात्रृषि पांतजली ने योग पर सारी चर्चा की है। उनका सूत्र है कि योग से चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। यहां योग व निरोध दोनों को समझना जरूरी है। आज मानव आसन लगाता है और अपनी वृतियों पर रोक लगाता है और समझ रहा है कि मैं कुछ प्राप्त कर रहा हूँ।

योग का आशय प्लस से है। इसाईयों का धार्मिक चिन्ह क्रुश नहीं प्लस है। आप गौर करें कि प्लस की नीचे वाली खड़ी लाईन बड़ी है। कहते हैं कि जीसस को क्रुश पर चढ़ा दिया था। यह सिर्फ एक कहानी है सत्य घटना नहीं है। यह कहानी सब योग की बात कह रही है। योग का मतलब हमारी ऊर्जा यानि काम की शक्ति जिसे कामनाएं, इच्छाएं, आंकाक्षाएं कहते हैं। वह बाहर भिन्न–भिन्न जगहों से जकड़ी हुई है। उन

कामनाओं के सभी जहां से हटाकर स्वयं से जुड़ने को योग कहते हैं। हमारी कामनाएं वासनाएं बहुत सारी नहीं है – सिर्फ एक ही है परन्तु भिन्न–भिन्न आयामों में बंटी हुई है। इसलिए कामनाएं व वासनाएं बहुत सी लग रही हैं। ये बार–बार आती हैं या उठती हैं इसका यह मतलब नहीं है कि कामनाएं बहुत सी है। नहीं। यह सब एक ही है। हमें सिर्फ भिन्न आयामों कके कारण भिन्न–भिनन प्रतीत होती हैं। इसी ऊर्जा को सभी कामनाओं के बिन्दुओं से हटाकर एक केन्द्र में संग्रित करने का नाम योग है। जब योग होगा तब सभी कामनाएं समाप्त हो जाएंगी या कामनाएं समाप्त हो, योग हो जाएगा। परन्तु शरीर को साधने से योग नहीं होगा। योग बिना किसी चिन्तन के होता है। बिना विचार के योग होता है। विचार तभी होगा जब इच्छाएं व कामनाएं होगी। शरीर तो हमारी कामनाओं व इच्छाओं के परिणाम हैं। हमारी बाहर बिखरी चेतना को सीमेन्ट कर एक करने को योग कहते हैं।

योग से वृत्ति का निरोध करना। यहां निरोध का आशय किसी कामना को रोकना समझा जाता हैं रोकना निरोध नहीं है। निरोध का आशय है कि वृत्ति समाप्त हो जाए। हमारे शरीर से बाहर हो जाए परन्तु कोई बाहरी परिणाम न लाए। जैसे क्रोध होता है तब आदकमी विषय की तरफ चल पड़ता है स्वयं को भूल जाता है तब फिर क्रोध बाहर नहीं हुआ। फिर श्रृंखला बन जाएगी। यदि क्रोध आए तब तुरन्त विषय से हट जाए और स्वयं पर अवधान देने से वृत्ति का निरोध हो जाता है। विषय पर अवधान देने से क्रोध की ऊर्जा बदल जाएगी और विषय पर कोई परिणाम नही होगा। इसलिए श्रृंखला नहीं बनेगी। निरोध को कन्डोम भी कहते हैं जो परिवार नियोजन वाले कन्डोम का प्रचार करते हैं। इसकास मतलब यही हुआ कि कन्डोम का प्रयोग करने पर सन्तान नहीं होगी क्योंकि वृत्ति अवश्य बाहर हुई, ऊर्जा अवश्य नष्ट हुई लेकिन परिणाम नहीं लाएगी परन्तु यह योग नहीं हैं निरोध शब्द उपयुक्त लिया गया है। वृत्ति को रोकना दबाना निरोध नहीं होगा।

क्योंकि शरीर हमारी कामनाओं का परिणाम क्रोध, भय, सन्ताप, चिन्ता, दुख सभी हमारी वृत्तियों का परिणाम है। आज का मानव इन वृत्तियों से पूरी तरह ग्रसित है। थोड़ा सा कुरेद दो– तुरन्त आपको देखने में मिल जाएगा। यदि क्रोध का विषय हो तो उबल पड़ेगा। स्वयं को भूल जाएगा। कामना का, वासना का विषय हो तो पागल लगेगा। स्वयं को भूल जाएगा। भय चिन्ता का विषय हो तो भी व्यक्ति स्वयं को भूल जाता है। यदि

शरीर में पीड़ा हो तो भी उसे पीड़ा ही नजर आएगी। इन तमाम के पीछे एक ही कारण है कि व्यक्ति स्वयं को भूल जाता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं से हटकर विषय पर होता है और स्वप्न में खोया रहता है। स्वप्न हमेशा नींद में आते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति नींद में है। प्रायः व्यक्ति नींद में पैदा होता है, नींद में ही यहां से चला जाता है। नींद में ही सभी कार्य करता रहता है।

जिन्होंने यह जाना है उन्होंने संसार को स्वप्न कहा है। स्वप्न की मुख्य विशेषता है कि स्वप्न सदैव नींद में ही आता है। वह सत्य प्रतीत होता है। यदि व्यक्ति को स्वप्न का पता चल जाए कि यह स्वप्न है तब स्वप्न समाप्त हो जाता है और नींद टूट जाती है। स्वप्न में कभी यह मालूम नहीं होता है कि यह स्वप्न है। स्वप्न का पता नींद के टूटने पर चलता है कि स्वप्न था।

चिन्ता, दुःख, पीड़ा, भय जब होता है तब ये सब इस बात की सूचना देते हैं कि एक बिन्दू वाले एक केन्द्र हमारे में यह बताता है कि भय, पीड़ा आदि है उस केन्द्र पर कुछ नहीं है। दो बिन्दु के बिना तुलना नहीं हो सकती। एक बिन्दू हमारे में अवश्य है जो यह तुलना करता है जहां यह सब भय, चिन्ता आदि नहीं है। तभी हमें पीड़ा, भय आदि का पता चलता है। इसका मतलब यह हुआ कि हम पीड़ा भय आदि नहीं है। उस केन्द्र पर ये सब कुछ नहीं है। यह सब अन्य केन्द्रों पर है। हमें जब तक उस केन्द्र का पता नहीं होगा तब तक हम नींद में ही होंगे क्योंकि हमें अपने केन्द्र का पता नहीं है और हम विषयों से संयुक्त हो गये हैं, हम केन्द्र से संयुक्त नहीं है। क्योंकि हमें केन्द्र का पता ही नहीं है। केन्द्र से संयुक्त कैसे हो सकते हैं? हम विषयों से संयुक्त हैं विषयों की हमारे में भीड़ सी लगी हुई है। इसलिए केन्द्र का पता नहीं हो सकता हैं यदि स्वयं के केन्द्र से संयुक्त हो जाए तो हम साक्षी बन जाते हैं। सिर्फ द्दष्टा रहते हैं। सिर्फ हतनी सी बात हमारे धर्म शास्त्रों में व पौराणिक कथाओं में कही गई है कि साक्षी कैसे हुआ जाए? ध्यान किस प्रकार किया जाए आदि अनेक विधियां उस केन्द्र तक पहुचने के लिए बताई गई है।

परन्तु जो दिखाई नहीं देता, सुनाई नहीं देता, स्पर्श नहीं किया जाता – उससे संयुक्त कैसे हुआ जाए? हमें बाहर के विषय दिखाई देते हैं और उनसे हम संयुक्त हैं। हम परिवार, समाज, देश, धर्म व रीति रिवाज से संयुक्त है। ऐसे वास्तविकता यह है कि हम

शब्दों से संयुक्त हैं। सिर्फ दो शब्द ही हमें उखाड़ सकते हैं। मात्र दो शब्द की गाली हमें विषयों की श्रृंखला में बाँध देगी क्योंकि हम शब्दों से संयुक्त हैं।

हम जिन–जिन विषयों से संयुक्त हैं उनसे हम नाता तोड़ना चाहें तो ही ध्यान अनिवार्य है। सिर्फ विषयों से हटने से उनसे नाता नहीं टूटता। आप परिवार, समाज छोड़कर यदि जंगल में बैठ जाएं। तब भी विषयों से नाता नहीं टूटता। उनकी जगह दूसरे विषय निकल आऐंगे। यदि लोहे को चुम्बक से दूर रखा जाए तब चुम्बक की शक्ति समाप्त नहीं होगी। फिर जब भी लोहे का संग होगा चुम्बक का पता चल जाएगा।

हमारे देश में मंदिर मस्जिद है। दोनों स्थल साधना के केन्द्र हैं परन्तु हमें साधना से क्या लेना देना है? आज हम मंदिरों, मस्जिदों का उपयोग भूल चुके हैं। साधना भूल चुके हैं। हमारी धार्मिक कहानियों में जो चमत्कारी घटनाएं दर्शाई गई हैं जिन्हें हम घटना की तरह देखें तभी हमें श्रृद्धा पैदा हो सकती है कि साधना की ओर मुख करें। परन्तु ये सब घटनाएं नहीं है और न ही इस प्रकार के चमत्कार हो सकते हैं। विज्ञान ने चमत्कार खोज कर बहुत से आपके सामने रख दिए हैं जिन्हें हम चमत्कार नहीं मानते, सिर्फ वैज्ञानिक प्रक्रिया मानते हैं। लेकिन हम हमारी धार्मिक कहानियों में जो चमत्कार दिखाए गए हैं उनकी हम उपेक्षा रखते हैं।

हमारी धार्मिक कहानी में राजा मोरध्वज ने ब्राह्मण के कहने से अपने पुत्र को पत्नी के सहयोग से करोत से काट कर ब्राह्मण के सिंह के खिला दिया जासे सिंह ब्राह्मण के साथ था। कहते हैं कि ब्राह्मण के वेष में कृष्ण थे और सिंह के वेष में अर्जुन थे। फिर राजा मोरध्वज खाना परोसने लगा और चार थाली लगाई परन्तु ब्राह्मण ने कहा, नहीं पांच थाली लगाओ। फिर पांच थाली लगाई गई और ब्राह्मण ने मोरध्वज के पुत्र को आवाज दी और वह आ गया।

हजरत इब्राहीम ने अपने बेटे इस्माईल की कुर्बानी दे लीकिन कुर्बानी के ठीक समय पर ईस्माइल की जगह बकरा (मेंढ़ा) बन गया। हमें दोनों कहानियों में परमात्मा के चमत्कार दिखाई देते हैं। हिन्दू मुस्लिम अपने धार्मिक क्रियाकलापों को ठीक उसी तरह समझ रहे हैं जैसे कहानी कही गई है।

क्या ये दोनों घटनाएं सत्य प्रतीत होती हैं ? ये घटनाएं सत्य नहीं है परन्तु कहानियां सही है। रामदेव जी की कहानियों में भी बकरियों का जिक्र किया गया है। ऐसे अजमल ने भी अपना नाम गुण धर्म के अनुसार इस शरीर का रखा है। आज का मतलब बकरे से है और मल का आशय गन्दगी से है। प्रत्येक आदमी मैं–मैं–मैं करता है कि मैं ठीक कर रहा हूँ। परन्तु मैं–मैं–मैं बकरा ही कर सकता है। धार्मिक गुरूओं ने बकरे को अभिमान यानि अहम् का प्रतीक लिया है और कहानी कही है। अभिमान को मारना अनिवार्य है क्योंकि अभिमानी कभी वर्तमान में नहीं हो सकता। हमेशा भूत व भविष्य से जकड़ा रहता है। आदर्श, सिद्धान्त नियम सब भविष्य में होते हैं अभिमान किसी एकत्रित की हुई वस्तु पर ही होगा जो अतित से जुड़ा है। अतः अभिमान को काटना होगा क्योंकि सबसे प्रिय हमें अपना इगो है। और परमात्मा ने सबसे प्यारी चीज को मांगा। स्वयं के मैं के बराबर कोई चीज दुनियां में प्यारी नहीं है। मोरध्वज से ब्राह्मण के रूप में कृष्ण ने पुत्र की कुर्बानी मांगी थी। मेरा सिंह (शेर) भूखा है। हम भोजन करेंगे तब हमारा शेर भी भोजन करेगा। मोरध्वज व उनकी पत्नी से पुत्र की कुर्बानी यानि बाहरी ज्ञान जो इकट्ठा किया है उसे काटने के लिए कहा और उन्होंने ऐसा ही किया। पुत्र का आशय ज्ञान से लिया गया है। यह सिर्फ स्मृति से अलग होने की बात है।

अब यदि आप अपनी स्मृति से एक बार कट जाए– आप अपने स्मृति से एक बार विच्छेद कर दें तब ये एक बार का विच्छेद हमेशा के लिए होता है। यह कहते हैं कि तुरन्त आप सुप्रीम एनेर्जी से जुड़ जाऐंगे और फिर से आपकी स्मृति व शरीर वैसा ही होगा। यह आत्म विस्फोट की कहानी है। यह समाधि की कहानी है। महाभारत में गंगा ने सात पुत्रों को पानी में बहाया था। यह कहानी बहुत बारीकी लिए हुए है।

दलजी बनियां रामदेवरा अपनी पत्नी के साथ गये थे। साथ में एक चोर भी हो गया। रासते में मौका पाकर चोर ने दलजी की गर्दन काट डाली और उनकी औरत के गहने वगैरा लेकर भागा परन्तु उसी समय बाबा रामदेव जी घोड़े पर सवार हुए आए और दलजी की पत्नी को कहा कि दलजी का सिर धड़ से लगाओ और कपड़े से ढक दो। मैं चोर से तुम्हारे सारे गहने छीन लाया हूँ। अब मैं उसे पकड़ कर यहां लाता हूँ। दलजी की पत्नी ने ऐसा ही किया। थोड़ी सी देर में दलजी उठ बैठे और कहा कि नींद बहुत अच्छी आई। पत्नी ने सारी कहानी सुनाई परन्तु उन्होंने माना नहीं। सिर को धड़ से लगाते समय

दलजी की चोटी बीच में आ गई और वह बीच में रह गई। इससे उन्हें पता चला कि वास्तव में सही बात है।

यहां दलजी का आशय हमारे विचारों से है। हमारे विचारों के दल के दल हैं। जाति के बनिया यानि एक विचार अनेकों विचारों को पैदा करंता रहता है एक विचार बना फिर अनेकों विचार बनते रहते हैं।

यह चोर गर्दन काटने का आशय स्मृति से कटना है। स्कमृति से कटे बिना विचारों से नहीं कट सकते। यहां स्मृति से कटने पर वापिस स्मृति से अपने आप जुड़ जाते हैं। फिर हमारी पहले वाली स्मृति के बीच दलजी की चोटी की तरह दरार होती है। एक रेखा होती है यही समाधि की कहानी है यही परमात्मा का पैदा होना होता है। जैसे एक कच्चा नारियल होता है और एक पक्का नारियल होता है। कच्चे नारियल को तोड़ेंगे तब साथ में चिपकी हुई गिरी भी टूटेगी क्योंकि बाहर की चोट भीतर तक पहुंचती है और गिरी पर भी चोट चिपकी होने के कारण लगती है परन्तु पक्के हुए नारायिल की गिरी भीतर अलग हो जाती है। पक्के नारियल को तोड़ने पर भीतर की गिरी पर चोट नहीं लगती है। वह गीरी पूरी की पूरी गट के रूप में बाहर आ जाती है। नारियल पर लगी चोट उस पर नहीं लगती जैसा कि हम स्मृति से कट जाए तब हमें भीतर का पता चल सकता है। फिर बाहर का प्रभाव हमारे पर नहीं पड़ सकता।

परन्तु हम ना समझी के कारण इन कहानियों के गलत अर्थ ले लेते हैं। हिन्दू–मुस्लिम बकरे काटते हैं। हिन्दू पुत्र प्राप्ति के लिए भैंरूजी व माताजी के आगे बकरों की बलि चढ़ाते हैं, मुसिलम समुदाय परमात्मा के लिए बकरों की कुर्बानी करते हैं लेकिन यह भी अनिवार्य है क्योंकि इस शरीर को छोड़ने पर हमें सबसे पहले बकरे का शरीर ही मिलता है क्योंकि यह हमारे मैं का परिणाम है। शास्त्र में सबसे पहली राशि मेष यानि बकरे की है। अतः उनहें कटना भी जरूरी है। अब यदि आदमी में मैं यानि अभिमान रहे ही नहीं तब बकरा योनि भी समाप्त हो सकती है।

ये सब बाते मैं क्यों कह रहा हूँ? कैसे व कहां से कह रहा हूँ? इनसे क्या होने वाला है? इसके लिए आप अगले अध्याय में देखें सम्पूर्ण साना के आखिर में दान व त्याग पैदा होता हैं इसलिए बाबा रामदेव के दो पुत्र हुए। भगवान राम के दो पुत्र हुए। कृष्ण के

दो पुत्र हुए। शिव के भी दो पुत्र हुए। यानि साधना के आखिर में सिर्फ त्याग व दान पेदा होता है। दान का आशय कि शरीर को हमेशा के लिए प्रकृति को सुपुर्द कर दिया जाता है जो परमात्मा से मिला हुआ है। त्याग का आशय हमेशा के लिए प्रदार्थ के ढांचे को त्याग दिया जाता है। वरना इनके दो–दो पुत्र क्यों हुए? उनके कोई परिवार नियोजन की पाबन्दी नहीं थी। परन्तु आखिर में सत्य व ज्ञान का यही परिणाम होता है।

कहानियों की भाषा में सारा साधना का विवरण व ढांचा है, जो कुछ कहा गया है वह एक साधक के लिए है क्योंकि कहानी को अक्षर ज्ञान हुए बिना भी समझा जा सकता है। संस्कृत व अन्य भाषा कोई भी कठिन या सरल हो परन्तु उससे पूरी बात समझ नहीं आ सकती है इसलिए सभी ने सतय को कहानियों में कहा है जो कहा नहीं जा सकता। मैं यदि एक–एक कहानी का अर्थ करूं तब शद बहुत बड़ी–बड़ी किताबें बन जाएंगी इसलिए थोड़ा–थोड़ा सार मैंने प्रकट किया।

।। भारत ।।

भारत विज्ञान ने 1997 जनवरी में एक सूत्र प्रतिपादित किया है "एन्टी मेटर यानि प्रत्येक पदार्थ का प्रति पदार्थ होता है। परन्तु हमारे शास्त्रों में तो पहले से ही विद्यमान है कि सिर्फ पदार्थ ही क्या प्रत्येक आयाम का प्रति आयाम होता हैं। प्रत्येक शब्द का भी प्रति शब्द होता है। यानि सबका विपरीत होता हैं हम इस विपरीत के सूत्र से बहुत कुछ जान सकते हैं। किसी भी क्षेत्र में हमें जो समझना है तब उसका विपरीत करके समझा जा सकता है। परमात्मा के विपरीत प्रकृति होती है। प्रकृति के पदार्थ दिखाई देते हैं। परन्तु परमात्मा दिखाई नहीं देता है। ठीक इससे विपरीत है। आदमी की विपरीत औरत होती है। दोनों के गुण धर्म व अंग प्रत्यंग कितने एक दूसरे के विपरीत है? एक देता है दूसरा लेता है एक में ग्रहण करने की शक्ति है एक में देने की शक्ति है। वह आकार व शक्ति से कितने एक दूसरे के विपरीत हैं आप गौर करेंगे तब समझ सकते हैं। प्रकृति व परमात्मा के नियम विपरीत के सूत्र पर आधारित हैं।

यदि आपको कोई कहे, कि मैं डरता नहीं हूँ। इसका मतलब हुआ कि वह डरता है वरना उसे यह बात कहने की आवश्यकता नहीं है। भीतर भय उसके छीपा है। कई व्यक्ति वार्ता के दौरान कहते हैं कि "मैं झूठ नहीं बोलता हूँ" उसका मतलब हुआ कि यह व्यक्ति

ज्यादा झूठ बोलता है। क्योंकि सत्य को कहने की आवश्यकता नहीं है वह समय–समय पर अवश्य प्रकट हो जाता है। परन्तु इनको भी परिस्थिति के अनुसार ही विपरीत करके समझा जाता है। कहने वाला किस आयाम में व उसके कहने के ढंग आदि को देखने पड़ेंगे।

आप पशु को देखिए वह आदमी के विपरीत है। आदमी खड़ा रहता है परन्तु पशु झुका रहता है। पशु के आगे के पावं भीतर की ओर मुड़ते हैं। हमारे घुटने पीछे की तरफ मुड़ते हैं परन्तु पशु के पीछे के पांव के भीतर की तरफ मुड़ते हैं। अतः आप एक–एक अंग को विपरीत के सूत्र से देखेंगे तब सब विपरीत समझ आ जाएगा। यह सब मैंने पदार्थ के विपरीत के बारे में कहा है।

विपरीत का अर्थ उल्टा होता है। आप कमरे में प्रवेश करते हैं तब भी उलटे, बाहर आते हो तब भी उल्टे। बच्चा पैदा होता है वह भी उल्टा, आप दर्पण में अपना मूंह देखते हैं वह भी उल्टा दिखाई देता है। अतः यह सूत्र समझने के लिए उपयुक्त है। इस जगत में विपरीत के बिना कोई चीज नहीं है।

गीता में अर्जुन को भारत नाम से भी सम्बोधित किया है। भारत किसे कहते हैं? वह भी आप विपरीत के सूत्र के आधार पर समझें।

हम भारत की संधि विच्छेद करें, जैसे भ+अरत। भ का आशय भूमि से है यानि 'भ' का आशय पदार्थ से है। अरत का मतलब होता है, न रत होना न अरत होना। इसका मतलब हुआ कि भारत वह आदमी है जो इस पदार्थ के शरीर के साथ है परन्तु इसमें रत नहीं है और न ही अरत है। इसलिए अर्जुन को पार्थ भी कहा है।

यदि कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा में, हाथ में बंशी लिए, दुपट्टा व धोती पहन कर मैं बड़े दर्पण के सामने खड़ा होऊं, तब दर्पण में जो चित्र बनेगा और उस चित्र की परिधि पर रेखा डाल दें, तो भारत का नक्शा दर्पण पर बन जाएगा। क्योंकि मेरे सिर के बाल कश्मीर के पश्चिमी और उतरी नक्शे के आकार की तरह है। इसका मतलब हुआ कि प्रत्येक आदमी ही भारत है। अब इसे विपरीत के सूत्र के आधार पर समझें।

हम अरबों की संख्या में हैं परन्तु भारत है हम चलते फिर हैं परन्तु भारत चलता नहीं है। हम पदार्थ के बने हैं परन्तु भारत का नक्शा सिर्फ लाईनों से बना है। पृथ्वी पर सीमाएं अंकित है।

अतः हम अपने को समझकर भारत को समझ सकते हैं। या फिर भारत को समझ कर अपने को समझ सकते हैं। सूत्र के आधार पर सब विपरीत है।

हमारे शरीर के अंगों के नाम है उसी प्रकार भारत के प्रमुख नगरों के व क्षेत्रों के नाम होंगे। विपरीत के सूत्र के आधार पर केशों से कश्मीर, बगल से बंगाल, अंगुलियों से आसाम, कोहनी से कलकत्ता, गुर्दे से गुजरात, नाभि से नागपुर और जहां हमारा ह्रदय केन्द्र ठीक छाती के बीच में है जिसे दिल कहा जाता है अतः दिल से दिल्ली। परन्तु उत्तर प्रदेश हमारे शरीर का ह्रदय है। हमारे शरीर की बायीं ओर ह्रहै लेकिन भारत के नक्शे में दायीं ओर है। परन्तु दर्पण के सामने खड़ा होने पर नक्शे में भी दायीं ओर हो जाएगा। हमारा ह्रदय शरीर में एक महत्वपूर्ण अंग है। भारत में भी उत्तर प्रदेश प्राप्त एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। हमारा ह्रदय डॉक्टरों के अनुसार शरीर का रक्त संचार स्थल है जहां खून साफ होकर पूरे शरीर में गति करता है। गन्दा खून साफ होने के लिए ह्रदय में आता है इसकी कार्य प्रणाली डॉक्टर बताते हैं कि शरीर संचालन में ह्रदय प्रमुख है।

ठीक सूत्र के आधार पर उत्तर प्रदेश में ही आयोध्या व मथुरा है। जहां राम कृष्ण जन्में और जन्मते हैं। उत्तर प्रदेश में चुनाव के लिए 85 सीटें एम.पी. की है जो सब प्रान्तों से अधिक है। सन् 1947 के बाद ज्यादा समय हमारे देश के शासक उत्तर प्रदेश के ही रहे हैं। उसी प्रकार हमारे ह्रदयों में ही राम कृष्ण का स्थान है। हमारे ह्रदय में ही राम कृष्ण पैदा हो सकते हैं। ह्रदय का शासन पूरे शरीर पर है।

इसी प्रकार हमारे भारत के अन्य प्रान्तों को समझ कर हम अपने को समझ सकते हैं। जो भारत में ही वही हमारे में है। भारत का संविधान दिल्ली में है। नियम कानून सब दिल्ली से ही स्थापित हैं जो हमारे लिए व हमारे दिल में ही लागू होते हैं। जितने किटाणु हमारे शरीर में है। उतनी जनसंख्या भारत की है।

हमारे भारत का नक्शा 8 व 36 डिग्री से० आकांक्ष के बीच बना है। उसी प्रकार हमारे शरीर का तापमान होगा। हम 8 डिग्री से० तक साधारण रहेंगे। उसके बाद नीचे की

ओर हमें सर्दी महसूस होने लगेगी। ऊार में हम 36 डिग्री से. तक गर्मी महसूस नही करते हैं। उसके आगे हमें गर्मी अनुभव होगी। हमारे भारत के नक्शे में जहां नागपुर है। उसी अनुपात में हमारे शरीर में नाभि केन्द्र है। नागपुर में हमारे भारत का मुख्य पोस्ट ऑफिस है। जिस किसी पत्र का ठिकाना अस्पष्ट हो तब उस पत्र को खोलकर भीतर यदि ठिकाना हो तो उसे उस स्थान तक पहुँचाया जाता है परन्तु प्रत्येक पोस्ट ऑफिस को यह अधिकार नहीं है – यह अधिकार सिर्फ नागपुर हैड पोस्ट को ही पत्र का लिफाफा खोलकर, सही जगह पहुंचाए यानि पत्र को खोलने का अधिकार हैड पोस्ट ऑफिस नागपुर को है। अपष्ट ठिकाने के पत्र वहां पहुंचते हैं जिसे के खोलकर सही पते का मालूम करते हैं। उसी प्रकार अपना भी ठिकाना नहीं है यदि अपने को भी अपने ठिकाने का पता करना हो तब अपने को भी नाभि केन्द्र में जाना होगा। नाभि केन्द्र को सक्रिय करना होगा क्योंकि आदमी के सही प्रोग्राम पते नाभि में मौजूद है।

अतः जो भी हमारे में है वही भारत में है। जो हमारे शरीर का संचालन है उसी प्रकार विपरीत के सूत्र के आधार पर भारत का संचालन होता है। भारत में दो प्रकार की शासकीय कार्यप्रणाली है। केन्द्रीय प्रणाली व प्रान्तिय प्रणाली। केन्द्र का शासन सारे भारत पर है जो केन्द्रिय सरकार के अधिकार में है। दूसरी कार्यप्रणाली प्रान्तीय सरकारों की है जो प्रत्येक प्रान्त में सरकार है और उसके कानून नियम कुछ अलग है। परन्तु सभी सरकारें केन्द्रीय सरकार के अधीन है।

उसी प्रकार हमारे शरीर संचीलन में भी दोहरी प्रणाली है। एक ऐच्छिक और दूसरी अनैच्छिक। हम सांस लेते हैं। दिल धड़कता है। रूधिर अपने आप शरीर में दौड़ता है। भोजन अपने आप पचता है आदि तमाम क्रियाएं हमारे हाथ में नहीं है – सब हमारे केन्द्र के हाथ में है। हम उसमें हस्तक्षेप कुछ नहीं कर सकते। जहां इच्छित कार्यों की बात है जो हम कर सकते हैं वह हमारे हाथ में है। उसमें केन्द्र हस्तक्षेप नहीं करता परन्तु हम इच्छित कार्य भी करते हैं वह भी होता तो केन्द्र के ही अधीन है बिना उसकी आज्ञा के हम वह भी नहीं कर सकते। परन्तु कुछ सीमित शक्तियां हैं जो हमारे हाथ में है। हम एक पांव उठा सकते हैं। दोनों साथ नहीं उठा सकते। एक पांव उठाना अपने हाथ में है। चाहे दायां उठायें या चाहे बायां उठायें। दोनों पांव उठाना अपने हाथ में नहीं है।

यदि हम पर कोई दूसरा आदमी आक्रमण करता है तब हमारी भीतरी यानि केन्द्र की शक्ति ही काम करेगी। उसी प्रकार यदि किसी प्रान्त पर बाहरी हमला हो तब भी हमारी केन्द्रीय सरकार ही काम करेगी। केन्द्र सरकार को नियम सारे भारत पर लागू हैं।

यदि कोई आदमी मरता है तब उसका सारा शरीर प्रभावित होगा। वह उस शरीर को छोड़ देगा। यहां मरने से मेरा आशय देहान्त से है। अब यदि भारत के प्रधानमंत्री का देहान्त होता है तब सारा भारत एक बार स्तब्ध रह जाता हैं सारे भारत में हलचल व मायूसी छा जाती है। तत्काल दूसरा प्रधानमंत्री कार्यवाहक के रूप में चुना जाएगा परन्तु एक आदमी मरता है वह इस शरीर रूपी भारत को छोड़ देगा और दूसरा शरीर धारण करता है। दोनों ही विपरीत प्रक्रिया है। आदमी भी मरता नहीं है सिर्फ शरीर बदलता है इसलिए भारत नहीं मरता सिंर्फ प्रधानमंत्री बदलता है। हम नहीं मरते सिर्फ शरीर बदलते हैं।

हम करोड़ो–अरबों की संख्या में हैं लेकिन मरता कोई नहीं। सब शरीर बदलते हैं। यदि हम में से एक आदमी भी मर जाए जिसे वास्तविक रूप से व धार्मिक दृष्टि से मरना कहा जाता है तब वह एक आदमी ही इस समय सारे विश्व को प्रभावित कर देगा। लेकिन मरेगा कब? यदि मरेगा तो भारत में ही। वह आदमी हमेशा मरता भारत में ही है। इसलिए ही भारत को धार्मिक देश कहा जाता है।

यदि एक आदमी भी मर जाए जैसा मैंने अगले अध्याय में मरना बताया है कि मरना किसे कहते हैं, तब सारा विश्व उत्सव मनाएगा। क्योंकि मरने वाला अपना शरीर तो अपनी मर्जी से छोड़ेगा। कई प्रकार के वैज्ञानिक परीक्षण होंगे। सभी परीक्षण पूर्ण होने के बाद ही या जो उनकी रूपरेखा होगी उसी अनुसार वह मरेगा।

परन्तु वह आदमी भारत में मरेगा कौन? कहां मरेगा? और भारत के किस प्रान्त में है कि जो मरने वाला है? मरेगा या नहीं मरेगा? मरेगा तो क्यों मरेगा? बड़े उलझे हुए प्रश्न हैं।

प्रश्न व उत्तर हमेशा किसी भाषा में ही दिए जा सकते हैं लेकिन प्रश्न व उत्तर समझने के लिए प्रत्येक भाषा अधूरी है। जिससे सत्य समझा जा सके।

वेद व्यास जी, व वाल्मीकि जी ने महाभारत व रामायण लिखी है और राम व कृष्ण को भारत में पैदा होना बताया। भारत का आशय आदमी से भी है और भारत का आशय भारत देश से भी है।

भारत के अयोध्या में राम व मथुरा में कृष्ण पैदा हुए थे, परन्तु हमेशा आदमी यानि हमारे हृदय स्थल में पैदा होते हैं।

भारत के विपरीत हुआ पृथ्वी। यानि औरत। औरत की नृत्य की सृष्टि मुद्रा जो गोल होती है ठीक उसी प्रकार दुनियां का नक्शा हुआ। इसलिए हम पृथ्वी को भी मां कहते हैं। अतः पृथ्वी व औरत में कोई अन्तर नहीं है सिर्फ विपरीत का अन्तर है जैसे दो ध्रुव हैं।

भारत के नक्शे में दिल्ली व अयोध्या दो केन्द्र हैं। यदि दोनों केन्द्रों को मिलाते हुए संसार के नक्शे में रेखा खींचे तब वह रेखा दुनिया के नक्शे में लन्दन केन्द्र पहुंचेगी। सन् 1947 तक लन्दन वालों का शासन भारत पर था। लन्दन दुनियां के नक्शे में 0 डिग्री पर बीच में स्थित है। विपरीत के सूत्र के आधार पर अब भारत का शासन लन्दन पर व सारे संसार पर हो सकता है।

इसी विपरीत के सूत्र से भारत की स्थिति जो शासकीय, प्रशासनिक व न्यायिक प्रणाली आदि जो भी है, उसी प्रकार भारत के प्रत्येक आदमी की है। इस समय भारत कई कठिनाईयों से गुजर रहा है। उग्रवाद, कश्मीर समस्या, मंदिर–मस्जिद समस्या, व्याभिचार, भ्रष्टाचार, खून–खराब, दुर्घटनाएं प्राकृतिक आपदाएं आदि अनेक समस्याएं भारत के सामने मूंह फाड़े खड़ी है। क्योंकि इस समय धर्म लुप्त सा हो गया है। आज भारत में धर्म की परम आवश्यकता है। यानि आदमी में धर्म का अभाव है।

इन सब समस्याआसें का हल क्या है? और यह सब कैसे हल हो सकती है?

भारत के नक्शे में कन्याकुमारी व दिल्ली को पोईंट मानकर एक रेखा खींचे। फिर दिल्ली से एक रेखा अयोध्या पांईट तक खींचे। तब कन्याकुमारी व दिल्ली से खींची रेखा पर अयोध्या तक रेखा साढ़े तीन इन्च लम्बाई की होगी और 70 डिग्री का कोण बनेगा। विपरीत के सूत्र के आधार पर साढ़े तीन इन्च की रेखा 70 डिग्री का कोण बनाते हुए दिल्ली से पश्चिम की तरफ रेखा खींचे तब वह पाईन्ट ठीक रामदेवरा यानि रूणीचा पर

पाईन्ट बनेगा। इसका अर्थ हुआ बाबा रामदेव व राम एक दूसरे के विपरीत है परन्तु समान है। दोनों विष्णु के अवतार माने जाते हैं। राम पूर्व में है, बाबा रामदेव पश्चिम में है। धर्म की नींव बाबा रामदेव डालेगा इसलिए उनके मन्दिर में सिर्फ पद चिन्हों की पूजा होती है। धर्म की पूरी व्याख्या राम तक पहुंचने पर होगी। बाबा रामदेव कलयुग का देव माना गया है परन्तु राम सत्य युग के भगवान माने गए हैं? बाबा रामदेव को हिन्दू मुस्लिम दोनों मानते हैं।

भारत के नक्शे में अब अयोध्या से पाईन्ट मानकर मथुरा तक लाईन खींचे और इसे आगे पश्चिम की ओर बढ़ाते चलें तब बीकानेर पाइन्ट पर आती है। मैं यह सब बीकानेर में बैठा लिख रहा हूँ जो सभी बाहर क़े केन्द्रों व भीतर के केन्द्रों से आता है। इसे संसार के नक्शे में और आगे बढ़ाए। तब यह लाइन मदीना पाइन्ट पर जाती हैं अयोध्या से रूणीचा पाइन्ट मानकर लाईन खींचे और इसे संसार के नक्शे में आगे बढ़ाए तब वह मक्का पाईन्ट पर पहुंचेगी। इसका अर्थ हुआ कि ये पाईन्ट हमारे भारत व संसार के नक्शे में पवित्र स्थल है। ठीक इसी प्रकार ये केन्द्र हमारे में भी है। ये केन्द्र सीधी लाईनों से जुड़ते हैं। क्योंकि लाईनें प्रकाश की किरणों की तरह सीधी चलती है। हम धार्मिक भाषा में परमात्मा को प्रकाश भी कहते हैं।

सीधी लाईन खींचने के लिए दो पाईन्ट होना अनिवार्य है। अब इस भारत के नक्शे को व अपने को ध्यान में रखते हुए देखिए कि मैं जो लिख रहा हूँ वह कहां से आ रहा है? यह सब अयोध्या, मथुरा, मक्का, मदिना, रूणीचा, कन्या कुमारी व दिल्ली को केन्द्र मानते हुए सभी केन्द्रों से आ रहा है क्योंकि ये केन्द्र आप में भी है और मुझ में भी है। मैं बीकानेर में बैठा यह लिख रहा हूँ। यह बीकानेर केन्द्र मुझ में भी है और भारत के नक्शे में भी है। भारत के नक्शे में सीधी रेखाएं प्रकाश की तरह अयोध्या, मथुरा व दिल्ली से आ रही है यानि स्वयं में भी स्वयं के केन्द्रों से ये सारी बातें आ रही है।

ऐसे बीकानेर एक विशेष स्थान है। जैसे एक नक्शा आदमी का आपका या मेरा। दूसरा नक्शा भारत का। यानि मेरे व भारत के नक्शे के बीच पांच नक्शे हें। तब मेरे बीच का नक्शा हुआ बीकानेर का व ऊपर का नकशा भारत का व नीचे का नक्शा मेरा। यानि कुल सात नक्शे होने चाहिए। इस समय बीकानेर का नक्शा भी भारत के नक्शे जैसा बन

गया है। बीकानेर शहर का नक्शा जहां मकान भवन बने है उसी तक का नक्शा समझा जाएगा। यदि इस समय हैलीकॉप्टर से बीकानेर का ऊपर से चित्र लिया जाए तब वह भारत के नक्शे की तरह होगा।

अब आप पूरी तरह से अवगत हो गए होंगे कि जो स्थल भारत में है वही स्थल हमारे में भी है। भातर का मुख्य केन्द्र दिल्ली है और वहां पर ही भारत के प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति विराजते हैं। इसी प्रकार आपके शरीर के भी राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आपके हृदय केन्द्र में विराजते हैं। दोनों का काम देश को चलाना होता हैं धार्मिक भाषा में देश को भी शरीर की संज्ञा दी गई है। जैसा आपका और प्रधानमंत्री का शरीर है उसी में भी केन्द्र समान है हम सभी का शरीर समान है तब केन्द्र भी समान ही होंगे। यदि भारत का प्रधानमंत्री आपके या मेरे गले मिले तब क्या होता है? शायद आप गौर करें आपके समझ में आ जाए। यानि दो नक्शे भारत के आपस में मिले तब क्या स्थिति होगी? तब दिल्ली का केन्द्र हमारे हृदय केन्द्र से मिल जाएगा और अयोध्या का केन्द्र हमारे रूणीचा केन्द्र से मिल जाएगा व रूणीचा केन्द्र अयोध्या केन्द्र से यानि अयोध्या की समस्या रूणीचा रामदेवरा चली जाएगी और रामदेवरा की समया अयोध्या चली जाएगी।

आज हमारे देश में अयोध्या का मुद्दा बहुत ही संवेदनशील है जो सारे संसार को प्रभावित कर सकता है। सिर्फ इतना ही नहीं प्रधानमंत्री का यहां बीकानेर आकर आपके या मेरे गले मिलने पर प्रधानमंत्री की समस्या हम पर आ जाएगी और हमारी समस्या प्रधानमंत्री को चली जाएगी।

अब यदि मुझ से पूछे कि आपकी समस्या क्या है? मेरा उत्तर यही है कि जो समस्या भारत की है वही समस्या सूत्र के आधार पर मेरी है। भारत जितना कर्जदार है उतना कर्जदार मैं भी हूँ। भारत इतनी प्राकृतिक आपदा सहन करता हुआ उग्रवाद जैसी समस्याओं से पीड़ित है ठीक उसी प्रकार मेरी यही स्थिति है। सिर्फ मेरी ही क्या सभी भारतीयों की होगी। क्योंकि जो भी भारत में होगा उस सब का संबंध होगा ही।

प्रधानमंत्री से गले मिलने से क्या होगा? यह तो मिलने पर ही पता चल सकता है। यहां प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति के गले मिलने का आशय प्रत्येक के शरीर में भी दो प्रधान शक्तियां है और उनका भी हमारे शरीर पर शासन है। हम अपने मालिक से मिल सकते हैं

यानि यह स्वयं की बात है। स्वयं को स्वयं से मिलना है। जिसने भी स्वयं में स्वयं को खोजा है उसे वह अवश्य मिला है। जिसने बाहर खोजा है उसे आज तक नहीं मिला है। अतः स्वयं से मिलने पर स्वयं प्रधानमंत्री मिल लेंगे और सभी समस्याएं हल हो जाएगी। समस्या केवल भारत की नहीं है बल्कि संसार के प्रत्येक आदमी की समस्या है। आदमी की समस्या हल हो जाए तब भारत की समस्या स्वतः हल हो जाती है। यहां भारत के प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति से आशय स्वयं के परमात्मा से यानि अपनी भीतरी शक्ति से मिलने का है। यदि भीतर परमात्मा मिले तब बाहर भी संभव है।

।। महाभारत ।।

संसार में महाभारत की कथा धार्मि दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। यह कहानी वेद व्यास जी ने अपने अनुभूति के आधार पर लिखी है। महाभारत आदमी के भीतर होता है यानि भारत के भीतर यानि आदमी के भीतर महाभारत होता है। परन्तु आज सारा संसार इसे ऐतिहासिक घटना की तरह मानता है। इससे यही सिद्ध होता है कि आज संसार में धार्मिक आदमी नहीं रहा है।

महाभारत जब भीतर घटनी शुरू हो जाती है तब महाभारत बाहर भी नजर आने लगती है। महाभारत हमारे शरीर की घटना है। स्वयं से शरीर को अलग करना है। हमारी मनःस्थिति और शरीर का युद्ध हैं इसके अभाव में प्रत्येक आदमी शरीर व मन से संयुक्त है। हमारा शरीर हमारे मन के कारण है। मन का आशय है हमारी वासनाएं व इच्छाओं का संग्रह। जिस प्रकार की इच्छाएं व वासनाएं होगी उसी प्रकार का हमें शरीर मिलेगा। महाभारत हमेशा आदमी के शरीर में होती है क्योंकि आदमी के अलावा अन्य शरीरों में यह सम्भव नहीं है। अन्य शरीरों के पास भाषा नहीं है और हो भी नहीं सकती।

यदि बाहर यानि हमारे देश में महाभारत करनी हो तब आप अपने भीतर महाभारत कीजिए बाहर शुरू हो जाएगी। यदि प्रत्येक आदमी महाभारत करे तब सारा भारत महाभारत हो जाएगा।

महाभारत में शासन हमेशा धृतराष्ट्र का रहा है। धृतराष्ट्र अन्धा है उसे दिखाई नहीं देता है। वह शासन करने के योग्य नहीं है। इसी तरह हमारे भीतर धृतराष्ट्र है और हमारे

बाहर भी धृतराष्ट्र। धृत का आशय व्यवस्था से है। सिद्धान्त, कानून, आदर्श, नियम आदि सभी धृतराष्ट्र हैं। ये हमारी व्यवस्था में हमारे बाहर भी है और भीतर भी है। धृतराष्ट्र की बाहर आवश्यकता है, भीतर आवश्यकता नहीं है।

धृतराष्ट्र का मतलब हमारे कानून से है। कानून भी अन्धा है। हमारे राष्ट्र का कार्य कानून पर आधारित है इसलिए धृत के साथ राष्ट्र शब्द जुड़ा है। क्योंकि राष्ट्र की व्यवस्था हमेशा कानून नियमों से चलती है। जब नियम कानून हमारे राष्ट्र में यानि बाहर है तब हमारे भीतर भी है। जो बाहर है वही हमारे भीतर है । भारत का संविधान दिल्ली में है, वही संविधान हमारे ह्रदय केन्द्र में भी है।

धृतराष्ट्र का बड़ा बेटा दुर्योधन है। दुर्योधन धृतराष्ट्र का प्रिय राजकुमार है। हमारे देश में भी शासन धन का ही है क्योंकि हम सब कानून से ग्रसित हैं इसलिए हमें भी दूसरों का धन प्रिय है। धन कई प्रकार के होते हैं। प्रत्येक आदमी धन के लिए पागल है। धन के लिए आज आदमी बहुत कुछ कर गुजरता है इसलिए कि बिना धन के आपको कुछ नहीं मिलता क्योंकि शासन धृतराष्ट्र का है, कानून का है। परन्तु कानून अन्धा है, अन्धकार है। हमारे भीतर भी अन्धकार है। हम सभी अन्धकार को हटाना चाहते हैं। हम कानून के माध्यम से देश में अन्धकार हटाना चाहते हैं लेकिन हटता नहीं ।

अन्धकार को अन्धकार हटाना चाहता है। हमारे देश में बहुत सी समस्याएं हैं। अपराध दिन–प्रतिदिन बढ़ते हाते हैं तब कानून व पहरे कड़े किए जाते हैं। यह ऐसा ही जैसे अन्धकार का बाहर फेंकते जाए मगर कोई अन्तर नहीं आता। यदि अन्धकार को हटाना है तब अन्धकार के साथ कुछ नहीं किया जा सकता। तब हमें दूसरे ढंग की क्रिया करनी होगी और अन्धकार तुरन्त भाग जाएगा। हमें दिया जलाना होगा। हमारे भीतर प्रकाश करना होगा, अन्धेरा तत्काल भाग जाएगा। हमें दिया जलाना होगा। हमारे भीतर प्रकाश करना होग, अन्धेरा तत्काल भाग जाएगा। अन्धेरा चाहे राष्ट्रका हो या स्वयं का हो– प्रकाश होने पर अन्धकार को भागना ही होगा।

लेकिन प्रकाश करने का प्रयास न तो राष्ट्र ने किया और न ही आपने। राष्ट्र भी अन्धेरा ढ़ो रहा है और आप व हम भी। यदि आप अपने भीतर प्रकाश कर ले, दिया जला लें तब राष्ट्र में भी प्रकाश हो जाएगा। परन्तु हम अन्धकार में हैं, अन्धकार से युद्ध कर रहे

हैं। वास्तव में हम अन्धे हैं। अपने भीतर धृतराष्ट्र है। वह धृतराष्ट्र शासन करता है इसलिए ही बाबा रामदेव के आह्वान में कहा कि मैं अन्धों को आंखें देता हूँ। बहुत महत्वपूर्ण बात कह गये हैं।

अन्धकार को हटाने के लिए अन्धकार को समझना होगा। परन्तु अन्धे को अन्धकार नहीं दिखाई देता। जिसने प्रकाश नहीं देखा उसे अन्धेरा भी नहीं दिखाई देगा। शायद आप समझ रहे हैं कि अन्धे को सिर्फ अन्धेरा दिखाई देता है। ऐसा नहीं है। बिना प्रकश के आप अन्धेरे को नहीं देख सकते, बिना प्रकाश के अन्धेरे की तुलना नहीं कर सकते कि वह अन्धेरा है।

शायद आप इस भूल में हैं कि हम प्रकाश को देख सकते हैं। आपको यह भी भ्रम है कि हम प्रकाश को देख रहे हैं। हम प्रकाश में चीजें देख रहे हैं। पृथ्वी, आसमान, ये भवन, फर्नीचर आदि प्रकाश में देख रहे हैं लेकिन प्रकाश को नहीं देख सकते। प्रकाश हमें दिखाई नहीं देता।

इसलिए महाभारत के युद्ध के पहले श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को समझाया था लेकिन समझ नहीं पाया। आखिर कृष्ण ने स्वयं अपना विराट रूप दिखाया जिसे प्रकाश कहा जाता है तब अर्जुन समझ पाया और महाभारत हुआ।

धृतराष्ट्र यानि कानून हमारे राष्ट्र की व्यवस्था बनाए हुए हैं। धृतराष्ट्र अपने बेटे दुर्योधन के संकेतों से चलता है कानून को भी धन से ममत्व है। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी जो अन्धी नहीं है। परन्तु पति अन्धा होने के कारण स्वयं ने अपनी आंखों पर पट्टी बांध रखी है। गांधारी दुर्योधन व धृतराष्ट्र से पूरी तरह सहमत नहीं है लेकिन विवश है।

गांधारी का आशय हमारे राष्ट्र के न्यायधिपतियों से है। इसलिए इसे विपरीत के सूत्र से समझा जाता है। इसलिए हमारा कानून का प्रतीक एक औरत आंखों पर पट्टी बांध कर तराजू तोल रही है। कोई अन्धा आदमी या औरत तराजू से कुछ तोले, तब लेने वाला कुछ भी ले जा सकता है और कम ज्यादा भी ले जा सकता है क्योंकि तोलेन वाले की आंखों पर पट्अी बन्धी होती है। गांधारी का आशय 'बू' से है। 'बू' को गन्ध कहते हैं यानि

अनुकरण की भावना। अतः धृतराष्ट्र व गांधारी को भी दुर्योधन प्रिय है। ये सभी हमारें भीतर है और हम इनसे संयुक्त होए हुए हैं।

आज हमारी व्यवस्था में यदि किसी न्यायधिपति की नियुक्ति होती है तब दुर्योधन का प्रमण–पत्र आवश्यक है। इनकम टैक्स फाईल होनी चाहिए। वरना नियुक्ति नहीं हो सकती।

ये सारी बाहर की व्यवस्था हमारे भीतर की कहानी कहती है। हम बाहर इन व्यवस्था को नहीं मिटा सकते लेकिन भीतर तो मिटाया ही जा सकता है और महाभातर की कहानी भीतर की कहानी है। श्रीकृष्ण पैदा होते हैं तब हमारे में महाभारत होती है। श्रीकृष्ण सुप्रीम एनर्जी है जिसे भगवान, परमात्मा कहा जाता है। यह कृष्ण सब में पैदा हो सकता है। एक में पैदा हो तब भी सब में पैदा हो सकता क्योंकि परमात्मा तो एक ही है। चाहे किसी में भी पैदा हो, पहचाना जाएगा क्योंकि सब में परमात्मा पैदा होने की संभावना है। जब प्रकाश सब में पैदा होता है तब अन्धकार को कुछ कहना नहीं पड़ता कि तुम भाग जाओ– वह स्वतः ही भाग जाएगा। प्रकाश अन्धकार की अनुपस्थिति। अन्धकार प्रकाश की अनुपस्थिति। दोनों एक साथ नहीं हो सकते। अतः महाभारत दोनों कृष्ण के पैदा होने पर सुनिश्चित है। तब कृष्ण कैसे पैदा हो?

हमारा राष्ट्र भारत स्वतन्त्र है परन्तु प्रत्येक नागरिक परतन्त्र है। मैं पहले अध्याय में कह चुका हूँ कि आदमी का आशय भारत से है। अतः प्रत्येक आदमी परतन्त्र है परन्तु भारत देश स्वतन्त्र है। परतन्त्र आदमी कभी भी सत्य की ओर सनहीं जा सकता। सतय व परमात्मा की तरफ जाना हो तब स्वतन्त्र होना होगा। परन्तु भारत देश स्वतन्त्र है वह सत्य परमात्मा की ओर जा सकता है। परतन्त्र का आशय है कि हम मुक्त नही हैं। किन्हीं बन्धनों से बंधे हे। हम आदर्शों, नियमों, कानून व रीति रिवाजों से बन्धे हैं। हम इन सबके अधीन"। हमारे में इन सबके साथ कर्ण भी इन सबका साथ दे रहा है। धृतराष्ट्र व दुर्योधन का साथ कर्ण दे रहा है। हम सूनी हुई बातों पर विश्वास करते हैं इसलिए कि हमारे भीतर भी धृतराष्ट्र व दुर्योधन है। ये कर्ण को नहीं छोड़ सकते हैं और हम इनसे जकड़े हुए हैं। हमारे में अन्धकार है इसलिए सुनी हुई बातें प्रिय हैं। इन तमाम के कारण जो हमें प्रत्यक्ष

दिखाई देता है उस पर विश्वास नहीं है। इस धृतराष्ट्र व कर्ण की वजह से हमारे पाण्डव भी इनके साथ हैं और इनके अधीन हैं इसलिए परतन्त्र है। तब स्वतन्त्र कैसे हुआ जाए?

स्वतन्त्र हमें सत्य ही कर सकता है इसके अलावा कोई उपाय नहीं है। मगर स्वतन्त्रता परतन्त्रता को प्रिय नहीं है, इसलिए इनके बीच युद्ध सम्भव है। यहां युद्ध का आशय मारकाट से नहीं है। मैं महाभारत के युद्ध की बात कर रहा हूँ जिसमें शरीरों की मारकाट नहीं है।

कर्ण की वजह से दुर्योधन प्रबल हैं। वह दुर्योधन का साथी है। इसीलिए तो आज धनी लोग धन को दीवारों में, बिस्तों में जहां छुप सकता है, छिपाते हैं। जब इनकम टेक्स की रेड़ पड़ती है तब छुपा हुआ दुर्योधन सामने आता है। ये लोग धन को छिपाते क्यों हैं? यह कमाल कर्ण का है? सुनी हुई बातें दुर्योधन के साथ हो जाती है। धन कागज के छपे टुकड़े हो सकते हैं। सोने चाँदी का पदार्थ भी हो सकता है लेकिन ये तो निर्जीव है। इनमें कोई जान नहीं है, माल पदार्थ हैं, इनमें समझ भी नहीं है परन्तु कौरवों, धृतराष्ट्र व कर्ण की वजह से हमें अधीन कर लेते हैं इसलिए हम परतन्त्र .है। यदि किसी के पास धन नहीं है फिर भी धृतराष्ट्र व कर्ण के कारण दुखी है और धन है तभी दुखी है। अतः इस दुख का कारण हमारा मानस हमारी मनःस्थिति, हमारे में धृतराष्ट्र दुर्योधन व कर्ण आदि के कारण हैं। क्योंकि हमारे पाण्डवों ने इन कौरवों से समझोता कर लिया है। दोनों आपस में मिले हुए हैं। इसलिए हम किसी भी जन्म में मुक्त नहीं हो सकते। यदि मुक्त होना है तब महाभारत करना होगा। इस अधीनता से मुक्त होना हो तब सत्य को पैदा करना होगा। सत्य ही सही मुक्ति दिला सकता है। सत्य की स्वतन्त्र करा सकता है।

एक बार चम्पालाल जी एक जंगली तोते को पकड़ लाए और घर में पिंजड़े में बन्द कर दिया। सुबह शाम पिंजड़े में दाना पानी रख दिया जाता था। वह जंगली तोता पिंजड़े में बहुत दुखी हुआ। वह स्वतन्त्र आकाश में उड़ा करता था। एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उड़ता रहता था। उसकी स्वतन्त्रता खत्म हुई। उसे लगा कि अब मैं हमेशा के लिए उड़ना भी भूल जाऊँगा। मेरे पंख बेकार हो जाएंगे। जैसे कि आज परतन्त्र आदमी की हालत है। पिंजड़ा चाहे लोहे का हो या सोने चान्दी का या हाड़–मांस का हो कोई फर्क नहीं पड़ता। पिंजड़ा आखिर पिंजड़ा ही होता है। स्वतन्त्रता समाप्त कर देता है।

। ।

एक दिन एक भिखारी गलियों में गीत गा रहा था। उस गीत का अर्थ था सत्य बोलो, सत्य सुनो, सत्य ही देखो। उस भिखारी के गीत को कोई नहीं सुन रहा था। हमारे भी ऋषि मुनियों व साधु संतों ने ऐसा गीत बार–बार गया है। लेकिन किसी ने नहीं सुना है। इस भिखारी का गीत उस तोते ने सुन लिया और उसने सोचा कि क्यों न इसका प्रयोग किया जाए।

एक दिन चम्पालाल जी के घर एक तकाजे वाला आया। चम्पालाल जी जमेशा उसे टालते रहते थे। उस दिन आखिरी वक्त ले रखा था क्योंकि जो उधारी मांगता है उसे तो समय पर तकाजे पर आना ही होगा। उसने आकर दरवाजे पर चम्पालाल जी को पुकारा। चम्पालाल जी ने अपने बच्चों को कह दिया कि बाहर जाकर कह दो कि वे घर पर नहीं है। बच्चों ने बाहर दरवाजे पर जाकर कहा कि चम्पालाल जी घर पर नहीं है। बाहर गये हुये हैं। इनते में बैठक खाने से पिंजरे में बैठा तोता बोल पड़ा कि चम्पालाल जी घर के अन्दर ही है और उन्होंने ही कहलाया है कि चम्पालाल जी घर पर नहीं है।

उधारी वाला घर में घुसा और चमपालाल जी को पकड़ लिया और भली बुरी सुनाई। हमेशा तुम चकमा देते रहते हो। मुझे तो आपसे ऐसी उम्मीद नहीं थी। आप घर में हैं और कहला रहे हैं कि घर पर नहीं है। मै। तो दस मील चलकर आया हूँ। आखिर चम्पालाल जी की बुरी फजीहत हुई। समझा बुझाकर माफी मांगकर वहां से विदा किया। उसके जाने के बाद चम्पालाल जी ने तुरन्त अपनी पत्नी को कहा जल्दी से इस तोते को यहां से निकाल। ये तोता मेरी आंखों के सामने नहीं रहना चाहिए और उस तोते को आजाद कर दिया। वह तोता बड़ा खुश्उा था फिर से खुले आकाश में नाचते हुए उड़ने लगा।

लेकिन हम परतन्त्र हैं हम भी इसी तरह स्वतन्त्र होकर नाच सकते हैं लेकिन मानव परतन्त्रता का आदि हो गया है। वह भूल गया कि हमारे भी पंख थे। हमें परतन्त्रता पसन्द है। हमें परतन्त्रता इसलिए पसन्द है कि परतन्त्रता में हर प्रकार से सुरक्षित है। पिंजड़े में पक्षी सुरक्षित होता हैं खाना पानी मिल जाता है। किसी तुफान व आंधी व किसी शिकारी का भय नहीं। परन्तु स्वतन्त्रता में कितना आनन्द है। परन्तु स्वतन्त्रता असुरक्षित है।

यदि भारत के नागरिकों को स्वतन्त्र होना है तब तो सतय बोलना ही होगा। सत्य के बिना स्वतन्त्र नहीं हो सकते, मुक्त नहीं हो सकते। हमारी गति नहीं हो सकती। हम फिर से इन्हीं शरीरों में भटकते रहेंगे।

हमारा पुराने समय से यह रिवाज चला आ रहा है कि जब कोई आदमी मरता है तब उसे अर्थी में बांधकर श्मशान ले जाते समय शवयात्री कहते हैं कि "राम राम सत्य है, सच बोले गत है।" उस आदमी के लिए यह उपदेश तो अब उपयोगी नहीं रहा। मरने के बाद सत्य बोलेन का क्या आशय है फिर भी हम ऐसा बोलते आ रहे हैं मगर हम सत्य नहीं बोलते।

एक दो बातें आप अवश्य ख्याल में रखें। सत्य कैसे बोला जा सकता है? हम सभी सत्य ही बोलते हैं। यदि कोई कहेंगे कि मैं अपने घर से आ रहा हूँ। यह भी सत्य ही हुआ। आप क्या काम करते हैं तब आप कहते हैं कि मैं अमुक काम करता हूँ। मेरा यह नाम है, मेरे पिता का यह नाम है। यह सब सत्य ही है। लेकिन यह सत्य, सत्य नहीं है। "राम राम सत्य है" यानि राम ही सत्य है। कृष्ण ही सत्य है। परमात्मा खुदा सभी सत्य हैं। केवल राम ही सत्य है ऐसा नहीं है। सत्य को समझना होगा।

परन्तु राम ही सत्य बोल सकता है। खुदा व परमात्मा सत्य बोल सकते हैं। कृष्ण सत्य बोल सकता है। बाबा रामदेव सत्य बोल सकता है, हर आदमी कैसे सतय बोल सकता है? यदि आज कोई सतय बोले तब वह मुशिबत में फंस सकता है क्योंकि धृतराष्ट्र का शासन है।

सत्य बोलने का अर्थ हो सकता है ? यदि कोई अपराध नहीं किया है तब सत्य नहीं बोला जा सकता। यदि अपराध किया है और सत्य बोले तब उस सत्य की ही कीमत है। परन्तु ऐसा तो राम कृष्ण व खुद ही कर सकते हैं। साधारण आदमी के लिए तो संभव नही है।

यदि हमें भी सत्य युग लाना है तब सत्य बोलना ही होगा वरना सत्य युग नहीं आ सकता। परन्तु 21वीं सदी में सत्य युग आएगा। परन्तु अपने वश की बात नहीं है। सिर्फ आप और हमारे बोलने से सत्य प्रकट नहीं होता।

। ।

महाभारत में दुर्योधन के मरने के बाद धृतराष्ट्र ने भीम को कहा कि तुम मेरे प्रिय हो मैं तुझसे गले मिलना चाहता हूँ परन्तु श्रीकृष्ण समझ गए कि धृतराष्ट्र बड़ा शक्तिशाली है। अन्धा हुआ तो क्या हुआ शक्तिशाली तो है ही। इसके लिए कृष्ण ने लोहे का भीमर बनाकर धृतराष्ट्र के गले मिलाया। तब धृतराष्ट्र ने उस लोहे के बने भीम को चकनाचूर कर दिया। भीम व श्रीकृष्ण देख रहे थे। इसलिए धृतराष्ट्र के शासन में सतय बोलना थोड़ा कठिन प्रतीत हो रहा है परन्तु असंभव नहीं है। इसके लोहे का भीम चाहिए।

पिछले अध्याय ''भारत'' में आपने पढ़ा होगा कि हमारे शरीर का मालिक हमारा ह्रदय केन्द्र है। उसी तरह हमारे देश के ह्रदय केन्द्र के मालिक राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री है। वे यदि सत्य बोले तब सभी सत्य बोल सकते हैं। क्योंकि हमारी व्यवस्था में सभी चीजें ऊपर से आती है, नीचे वाले उनका अनुकरण करते हैं।

परन्तु आज के राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री अगर हिम्मत जुटा लें कि हमने अपनी जिन्दगी में ये–ये अपराध किए हैं और सब के सामने सतय बोल दें, तब सत्य युग आ सकता है। परन्तु वे सत्य बोलेंगे नही क्योंकि पिछले प्रधानमंत्रियों का हमें अनुभव है। वे अपराधिक मामलों में फंसे हैं इसलिए वे शायद सत्य न बोलें। इसलिए भी सत्य शायद न बोले कि कोई अपराध किया भी नहीं हो या डरते है। धृतराष्ट्र की पुलिस सा सिर्फ दो ही कारण हो सकते हैं या तो अपराध जीवन में किया भी न हो या धृतराष्ट्र की पुलिस से डरते हैं।

यदि अपराध किया ही न हो तब तो सत्य नहीं बोलां जा सकता। वे सत्य युग नहीं ला पाएंगे। यदि पुलिस से डरते हैं तब तो उपाय है। पुलिस का उपाय तो किया जा सकता है परन्तु बात वहीं फिर से प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति पर आ जाएगी।

अपराध चाहे छोटा हो या बड़ा, अपराध ही है। पुलिस अपराधियों को पकड़ती है। क्यों न पुलिस का छोटा कर्मचारी ही सत्य बोल ले, लेकिन वह अपने बड़े अधिकारी, एस. पी. व डी.आई.जी. व आई.जी. से डरते हैं। न आई.जी. सत्य बोल ले परन्तु वे सरकार के गृहमन्त्रालय से रते हैं। तब फिर क्यों न गृहमंत्री ही सत्य बोल ले परन्तु वह भी शायद प्रधानमंत्री से डरता हो– इसलिए आखिर बात प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति पर पहुंचती है। सत्य तो उन्हें ही बोलना पड़ेगा।

यदि प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति सत्य बोले तब सभी सत्य बोल सकते हैं। वे हमारे देश के मालिक हैं। उनका अनुरण सभी कर लेंगे। यह माना हुआ सिद्धान्त है।

परन्तु आपको ऐसा संभव प्रतीत नहीं होता है। इसलिए क्यों न आप ही सत्य बोले लें। आप अकेले में सत्य बोले लें। परमात्मा अवश्यक सुन लेगा। यदि ऐसा संभव नहीं लगता है तब फिर विशाल रूप से सत्य प्रकट नहीं हो सकता। फिर छोटे–छोटे क्षेत्रों में प्रकट हो सकता है ऐसा संभव है। इसके लिए आप दो–चार व्यक्तियों के सामने सत्य बोल लें। परमात्मा अवश्य प्रकट होगा श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि मैं अवश्य प्रकट होता हूँ।

यदि हम सब सत्य एक साथ बोल लें तब किसका डर होगा। कौन पकड़ेगा और कौन सजा देगा। अपराधी तो एक दृष्टि से हम सभी हैं। क्या अपराध पकड़ में आए तभी अपराध कहलाता है। अपराध पकड़ में नहीं आए इसलिए अपराधी नहीं है। ऐसा नहीं हैं

दुर्योधन की वजह से आज का मानव अपराध करता है और दुर्योधन के कारण अपराधी बच निकलता है। क्योंकि धृतराष्ट्र को आज भी दुर्योधन प्रिय है। कर्ण साक्ष्य देता है। वहां अर्जुन की आवश्यकता नहीं है।

मेरी वार्ता में एक ने मुझसे कहा कि आपकी बात तो बड़ी सत्य लगती है लेकिन सत्य बोलने वाली बात पागलपन सी लगती है। इससे सारा मामला ही गड़बड़ा जायेगा। कोई सत्य नहीं बोलेगा। वे जल्दी में थे इसलिए समझे नहीं। क्या सत्य बोलना पागलपन है। सारे धर्मों ने सत्य के गुण गाए हैं। यदि सत्य बोल नहीं सकते तब इसका मतलब सत्य बोलना पागलपन है ऐसा नहीं है। सत्य तो सत्य ही है। सत्य बोलने के भी कई तरीके हमने खोजे हैं। हमारे धार्मिक पुरूषों ने सुझाए हैं जिसे सरलता से अपनाया जा सकता है।

परन्तु सत्य युग में तो सब सत्य ही बोलेंगे और कलयुग में सत्य बोला नहीं जा सकता। आप किस युग में जी रहे हैं वह आप स्वयं स्वयं पर निर्भर करता है। कलयुग का अर्थ आप पिछले अध्याय से पढ़ चुके हैं।

अतः राम राम सत है, मरने पर ही बोलते हैं। इसका मतलब यह भी है कि मरा हुआ आदमी ही सतय बोल सकता है जिन्दा व्यक्ति नहीं बोल सकता। उसे फिर या यों कहें कि

सत्य बोला और मरा। विपरीत के सूत्र से मरा का अर्थ उल्टा राम ही होता है। यानि इधर मरा व उधर राम बना। मरा को उल्टा पढ़ने से राम ही होता है।

हमारे भारत में कानून अंग्रेजों के बनाए हुए हैं। भारत स्वतन्त्रता से पहले दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 व दण्ड संहिता 1960 में बने हैं और अभी अंग्रेजों के ले जाने के बाद भी ज्यों के त्यों ये कानून चल रहे हैं। सिर्फ दण्ड प्रक्रिया व दण्ड संहिता ही क्यों प्रायः सभी कानून पहले के ही हैं।

सुना है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता व दण्ड संहिता अकेले लार्ड मैकाले ने लिखा है। लार्ड मैकाले का यह कहना था कि भारत का तमाम साहित्य और मेरी एक मुस्तकों से भरी आलमारी बराबर है। उनको यह गर्व था कि मैंने कुछ भी छोड़ा नहीं है। परन्तु भारतीयों की एक पंक्ति लार्ड मैकाले की उस पुस्तकों से भरी आलमारी के बराबर है। वह पंक्ति यही है "राम राम सत है, सत बोले गत है"।

सत्य बोलना बुहत टेड़ी खीर है। सत्य बोलने से अभिमान गिर जाता है। हमने जो भी शक्ति या जिसे श्रेष्ठ समझते हैं उन्हें इकट्ठा किया हुआ है, उस पर हमें गर्व होता है। महाभारत का युद्ध होता है तब सर्वप्रथम अभिमान यानि अभिमन्यु मारा जाता है। अभिमन्यु अर्जुन का पुत्र था। हमने अपनी आंखों के सामने जो प्रत्यक्ष है उसे इकट्ठा किया है, संजोया है और उसका हमें अभिमान होता है। यदि सत्य, परमात्मा व स्वयं की ओर जाना है तब सर्व प्रथम अभिमन्यु यानि अभिमान को मरना होगा और उसे धृतराष्ट्र के खेमे के लोग ही मार सकते हैं।

बाबा रामदेव की कहानी में जब अजमलजी पुत्र प्राप्ति के लिए द्वारका जी गए थे तब मन्दिर में प्रवेश करने से पहले मूछें कटवानी पड़ी थी। तभी मन्दिर में प्रवेश कर सके। यहां मूंछ से मतलब ही अभिमान से है। यदि स्वयं के मन्दिर में प्रवेश करना है तब सबसे पहले अभिमान को मारना होगा और सत्य बोलने पर ही अभिमान मर सकता है। तभी हमारे मन्दिर का द्वार आत्मा का द्वार खुल सकता है। बाबा रामदेव की कहानी कहती है कि एक दिन जब अजमल जी मन्दिर के बाहर बैठे थे तब मन्दिर के दरवाजे अपने आप खुल गए। इसका आशय भी यही है कि मूंछ को काटो, अभिमान को काटो, स्वयं आत्मा

। ।

का द्वार अपने आप खुल जाएगा। हमारे यहां मूंछ का बड़ा प्रश्न है। पुराने लोग कहते हैं कि मूंछ का सवाल है।

इसलिए मुसलमान मूंछ नहीं रखते हैं और दर्शाते हैं कि आदमी को अभिमान नहीं रखना चाहिए। यह धार्मिक प्रतीक है। परन्तु भूल गए इन प्रतीकों को कि ये प्रतीक क्या कहते हैं? कोई मूंछ नीची रखे, काटे या ऊँची रखें, बड़ी लम्बी बनाए या छोटी रखें या न रखें, कोई धार्मिक अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु यह धार्मिक प्रतीक धर्म की अनुभूति करवाते हैं, दर्शाते हैं। हम समझे या न समझे यह बात दूसरी है।

मुसलमान वह होता है जिसमें अभिमान नहीं होता है। यह धार्मिक प्रतीक है। मुसलमान का अर्थ ही धर्म की शुरूआत बताता है। मुसल का आशय मुर्ख यानि अज्ञानी से है कि मैं उस खुदा के बारे में कुछ नहीं जानता हूँ। अज्ञानी हूँ अपने को अज्ञानी मानता हूँ। मुसलमान जो अपने आप को उस ईश्वर, सत्य, परमात्मा के बारे में यह माने कि मैं कुछ नहीं जानता, अज्ञानी अपने आपको मानता हूँ तभी धर्म की शुरूआत होती है। यह धर्म की पहली सीढ़ी है। उस खुदा के बारे में हम कुछ नहीं जानते, अज्ञानी हूँ, अज्ञानी मानता हूँ, वहीं मुसलमान है। वहीं से धर्म की शुरूआत होती हैं अतः मुसलमान धर्म की शुरूआत धर्म के नाम पर कईयों ने दुकानें खोल रखी हैं कि ....

मात्र मुसलमान व हिन्दू, सिक्ख आदि कुछ भी माने उस मानने से कुछ नही होने वाला है। वास्तविकता यही है कि जो भी हमने बाहर से उस सत्य के बारे में सूचनाएँ इकट्ठा कर रखी है, इसे फैंक देना और यही मानकर चलें कि मैं उसके बारे में अज्ञानी हूँ। अज्ञानी मानता हूँ। मुसलमान मानता हूँ तभी धर्म की ओर चलने की शुरूआत होती है। यह अभिमान का गिर जाना होता है। तभ खुद के राज्य में प्रवेश कर खुदा के राज्य में प्रवेश कर सकते हैं।

तभी मुसलमानों में जो खुदा के नजदीक रहते है। उन्हें मियाँ कहते हैं। मियाँ शब्द का आशय भी बहुत छोटा, यानि बारीक, जिसे तुच्छ भी कहा जा सकता है। यानि जिसे अपने की छोटा मान लिया कि वे मैं तो तुच्द हूँ, मियाँ हूँ बारीक हूँ। वहीं से धर्म शुरूआत है।

अपने आपको छोटा मानना बहुत बड़ी बात है। यह मान रहित बात है। कौन अपने को छोटा व तुच्छ मानने को तेयार है? छोटे–बड़े के सवाल पर तो तलवारें खींच जाती हैं। युद्ध हो जाते हैं।

बाबा रामदेवजी का कहना है कि मैं अन्धों को आंखें देता हूँ लेकिन कौन अपने को अन्धा मानता है। सभी कहते हैं कि हम अन्धे नहीं हैं। हमारे पास आंखें हैं। सब कुछ दिखाई दे रहा है, दे रहे हैं। परन्तु जो भी दिखाई देता है वह सब माया है, सत्य नहीं है। यह भ्रम है कि हमें दिखाई दे रहा है। यह सब माया है, आंखें होने पर ही देख पाऐंगे वरना असत्य हमें सत्य दिखाई दे रहा है। जो खुद को नहीं देख पाए वह दूसरों को कैसे देख सकता है? यह परम नियम है। जिसने खुद को देख लिया, उसने सब देख लिया जो देखने योग्य था।

परन्तु जो अन्धा है वह क्या सत्य बोलेगा? क्योंकि बिना देखे हम सत्य नहीं बोल सकते। सत्य बोलने के लिए देखना जरूरी है। एक दृष्टिकोण से हम सभी अन्धे हैं। धृतराष्ट्र हमारे भीतर है इसलिए सत्य नहीं बोल सकते और जिन्होंने बोला है व हमारे समझ नहीं आता क्योंकि हमारे पास वे आंखें नहीं हैं। यदि आंखें हो तब प्रकाश से चीजें देख सकते हैं वरना कितना ही कोई समझाए कि प्रकाश में चीजें ऐसे दिखाई देती हैं सब बेकार है।

महाभारत में दुर्योधन को भीम मारने की प्रतिज्ञा करता है और दुर्योधन के मरने पर युद्ध समाप्त हो जाता है। भीम यानि स्पर्श। हमें हमारे शरीर का पता स्पर्श से चलता है। जब शरीर में दर्द होता है वह भी स्पर्श के कारण पता चलता है इसलिए कुन्ती पुत्र भीम बलवान होता है इसी के कारण हमें शरीर का अनुभव होता है। भीम सभी पाण्डुओं को संभाले हुए है। परन्तु दुर्योधन सभी को दुख पहुंचाता है। हमें यदि अज्ञानवश दुर्योधन प्रिय है तब कोई युद्ध नही होगा। कोई महाभारत नहीं होगी।

महाभारत शुरू होते ही अभिमन्यु यानि अभिमान को मरना होता है। यह सत्य है। अभिमान के मरने से तो महाभारत की शुरूआत होती है।

इसके बाद एक–एक करके मरते हैं। कर्ण मरता है उसे अर्जुन मारता है। कर्ण यानि हमने सुन–सुनकर जो सत्य अर्जित किया है वह नकारा हो जाता है। जब स्वयं को

प्रत्यक्ष दिखाई पड़ जाता है तब कर्ण की आवश्यकता नहीं रहती। फिर सुनने का अभिप्राय ही समाप्त हो जाता है। फिर साधक ध्वनि के भी पार चला जाता है। कर्ण के भाई का नाम शोर है। शोर का आशय ध्वनि से है। बिना शोर (ध्वनि) से कर्ण का कार्य पूरा नहीं होता है।

सिर्फ अभिमन्यु मारा जाए, बाकी सभी कौरव पक्ष के योद्धा जिन्दा रहे ऐसा नहीं हो सकता। अभिमान मरा तब फिर सब कौरव पक्ष के सभी को मरना ही होगा। कौरवों की सारी सेना मर जाएगी क्योंकि अभिमान अर्जुन का बेटा है।

यदि हमें अपने जीवन में महाभारत करनी है तब अभिमन्यु यानि अभिमान को मारना पड़ेगा और अभिमान तभी मर सकता है जब हम सत्य बोल दें। परन्तु जब हम कर्ण, दुर्योधन, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्म पितामह को नहीं समझ लें तब तक सत्य नहीं बोल सकते।

सिर्फ राम शब्द सत्य नहीं है। हम अज्ञानवश राम राम किए जाते हैं। हम राम राम करते ही इसलिए हैं कि हम राम नहीं है। हम कुछ और हैं। यदि राम होते तब अवश्य सत्य बोल देते। क्योंकि राम महान है। इसलिए कहते हैं राम राम सत है। हमारे केन्द्र के मालिक हैं। अभिमन्यु चक्रव्यूह में फंस जाता है। इसलिए कि हमारे केन्द्र में अभी धृतराष्ट्र दुर्योधन आदि विराजमान है। ये सिर्फ विराजमान ही नहीं साधारणजन पर तो इनका पूरा शासन है और साधारण जन इनके अनुयायी हैं। अच्छी मैत्री है। वहां युद्ध का प्रश्न नहीं है – सभी चचेरे भाई हैं। धृतराष्ट्र व दुर्योधन कुछ भी करें पाण्डवों को एतराज नहीं है बलिक समर्थन है, यही अज्ञान है।

हमारे भीतर अज्ञान हो और हम ऊपर से ज्ञान लाद लेते हैं। सुन–सुन कर ज्ञान इकट्ठा कर लेते हैं परन्तु भीतर तो अज्ञान ही है। यदि अज्ञानी के हाथ में ज्ञान दे दिया जाए तब वह ज्ञानी नहीं हो जाता है। इसीलिए तो आज हमारे धार्मिक धर्म गुरू इन धार्मिक पौराणिक कथाओं को नहीं समझ रहे हैं और उनका अनुकरण कर स्वयं ओरे में रहते हैं और दूसरों को भी अन्धेरे में रहने के लिए विवश कर देते हैं।

हिन्दू–मुस्लिम सदियों से बकरे की बली व कुर्बानी देते आ रहे हैं और समझ रहे हैं कि हम देवता व परमात्मा को पसन्द कर रहे हैं। समझ रहे हैं कि हम धार्मिक कृत्य कर रहे हैं। यह सिर्फ ना समझी का परिणाम हैं

यह हमारी धार्मिक पौराणिक कथाओं का परिणाम है। हमारे धार्मिक पूजन प्रतीकात्मक कहानी कह गए और हम उनके अनुसार कृत्य करते आ रहे हैं लेकिन उन्होंने क्या कहा? यह हमने समझने की कोशिश नहीं की है।

बात तो सही कही है जेसे महाभारत में सबसे पहले अभिमन्यु को मरना होता है। सबसे पहले अभिमान को मारना होता है। यह हम भाषा में कह रहे हैं कि आदमी को अभिमान रहित होना चाहिए। परन्तु धार्मिक साधकों ने कहानी के माध्यम से कहा है कोर्ठ अन्तर नही है सिर्फ हमें समझना है।

बाबा रामदेव जी का एक महत्वपूर्ण पर्चा है यानि अभिमान को केन्द्र बनाकर बात कही गई है।

"बाबा रामदेव जी का परम भक्त हरजी भाटी था। हरजी भाटी जंगल में बकरियां चराता था। एक दिन रामदेव बाबा उन्हें किसी अन्य भेष में मिले और कहा कि ये कटोरा लो और मुझे तुम्हारी बकरियों का दूध ला दो। मुझे बहुत भूख लगी है। हरजी ने कहा कि बकरियां छोटी–छोटी हैं और ब्याने वाली भी नहीं है इसलिए दूध नहीं है। परन्तु बाबा रामदेव नहीं मानें और कहा कि तुम झूठ बोल रहे हो। मुझे दूध दिखाई देता है। आखिर बाबा की जिद्द पर हरजी कटोरा लेकर बकरियों के पास गया और बकरियों के स्त्न दूध से भरे दिखाई दिए। हरजी ने पूरा कटोरा दूध से भर लिए और बाबा को दिया। बाबा ने सारा दूध पी लिया और खाली कटोरा हरजी को दिया और कहा कि इस टीबे के पीछे पानी का तालाब है, पानी का कटोरा भर लाओ। हरजी ने कहा यहां आसपास कहीं पानी नहीं है परन्तु बाबा ने कहा कि तुम्हें झूठ बोलने की आदत है। आखिर हरजी कटोरा लेकर पानी लाने के लिए चल पड़ा। हरजी को बकरियों के दूध होने का आश्चर्य हो रहा था। टीबा पार कर उसने कटोरे पर लगे दूध को पौंछ कर अपने मूँह में रखा ही था कि तुरन्त परमात्मा का भान हो गया।"

यह मात्र साधना की एक प्रतीक कथा है। कोई ऐसी घटना नहीं थी जैसा आप समझ रहे हैं।

हरजी भाटी का आशय प्रत्येक आदमी से है। हर का आशय का प्रत्येक, जी से आशय प्राणी से है इसलिए हमारे यहाँ नाम के पीछे जी लगाते हैं। फलांचन्द जी ढिकड़चन्द जी। भाटी का आशय पदार्थ से है, इस शरीर से है हरजी ने कहा कि बकरियां छोटी–छोटी है। इनके दूध थोड़े ही हो सकता है। साफ पागलपन की बात है। परन्तु बाबा रामदेव जी नहीं माने।

रामदेव जी के कहने का अर्थ है कि इन छोटी–छोआी बकरियों में ही दूध है, का मतलब कि तुं जब साधना करता है, धन करता है जब तुझे ये छोटी–छोटी "मैं" और मेरे का ख्याल छोड़ देना चाहिए। क्योंकि हरजी भाटी साधक था। यह सिर्फ एक साधक का अन्तर संवाद है। हरजी ध्यान समाधि में लगा रहता था लेकिन सफलता नहीं मिल रही थी।

परन्तु कहानी में हरजी समझता है कि इन छोटी–छोटी "मैं" से कया होता है? हरजी वर्षों से साधना करता था, परन्तु रामदेव जी कहते हैं कि अब तेरे में अब बड़ी "मैं" नहीं है। तेरे पास अब ये छोटी–छोटी "मैं" वह मेरापन है, वह भी छोड़ दें। यह मेरा शरीर, यह मेरी सांस, ये मेरी आंख, नाक आदि जो भी तुझे मेरे का भाव प्रतीत होता है, उसे भी छोड़ दें। हरजी का ख्याल था कि इससे क्या होने वाला है? रामदेव जी के ज्यादा आग्रह करने पर उसने वैसा ही किया और इन छोटी–छोटी "मैं" को भी त्याग दिया और तब उनको दूध के बहाने अमृतपान हो गया। यानि उन छोटी–छोटी बकरियों के भी दूध आ गया।

यहां बाबा रामदेव जी का आशय हमारे भीतर की सुप्रीम ऊर्जा से है। वह भीतर साधक को स्वयं संकेत दे देती है।

कहानी में बकरियों का अर्थ "मैं" से यानि अभिमान से लिया गया है। आपके शब्द कोष में इसका अर्थ नहीं है परन्तु धार्मिक लोगों ने बकरे का अर्थ अभिमान यानि "मैं" से किया हैं क्योंकि बकरे, बकरियाँ भी मैं अ अ, मैं अ अ, मैं अ अ करती रहती है। तभी कहा

गया है कि स्वयं के "मैं" के भाव को मारो। इसे कहने के लिए बकरे, बकरियों को प्रतीक बनाया गया है। लोगों ने समझा कि "मैं" स्वतः ही मर जाएगा। लोग बकरे बकरियों पर टूट पड़े। कहानी में कहने का अर्थ यह नहीं है कि बकरे को मारने से परमात्मा प्रसन्न होंगे सिर्फ ना समझी के कारण बेचारे बकरों की बलियां व कुर्बानियां चढ़ने लगे। भैंरूजी व माताजी व काली माँ के मन्दिरों में भिन्न–भिनन तरीकों से बेचारे बकरे बकरियों पर आ ठनी।

कहानियों में कहा है कि परमात्मा प्यारी से प्यारी चीज की कुर्बानी व बलि चाहता है। बात भी सौ प्रतिशत सही है कि परमात्मा पेदा करना है तब प्यारी से प्यारी चीज की बलि व कुर्बानी देनी पड़ेगी। तभी परमात्मा प्रकट होता है। थोड़ी सी भी कम प्यारी चीज की बलि से परमात्मा अवतार नहीं लेता। उसके अवतार के लिए सबसे प्यारी चीज की बलि व कुर्बानी अनिवार्य है, और जहां तक मैं समझता हूँ कि स्वयं के "मैं" यानि अभिमान से प्यारा इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। "मैं" यानि बकरा की बलि व कुर्बानी देनी चाहिए। इस "मैं" यानि बकरे से मतलब भी किसी के शरीर व शरीर की बलि व कुर्बानी से नहीं है। यहाँ बकरे का आशय स्वयं के "मैं" यानि अभिमान से है। कहानियों में किसी के शरीर की बलि के लिए नहीं कहा गया है। शरीर किसी का भी हो बकरे का हो या आदमी का, शरीर ने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा है परन्तु इस शरीर में बैठे मैं (बकरे) यानि अभिमान का दोष है। अतः शरीर में बैठे "मैं" यानि अभिमान को मारना चाहिए जिसके लिए साधना ही उपयोगी है। साधना के द्वारा ही उस "मैं" रूपी बकरे को मारा जा सकता है। इसलिए स्वयं के "मैं" (बकरे) को मारने के लिए कहा गया है कि मन को मारो। मैं (बकरे) यानि अभिमान की कुर्बानी व बलि दो।

अतः बकरे का अर्थ "मैं" (अभिमान) करना आध्यात्मिक गणित की दृष्टि से गलत नहीं है। सही प्रतीक लिया गया है लेकिन इसका नतीजा क्या हुआ है? और क्या हो रहा है? यह आपके सामने है।

इससे दो प्रकार की मुख्य हानि हुई है। पहली बात की बकरे की हत्या। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि आदमी परमात्मा से हमेशा–हमेशा के लिए वंचित हो गया। क्योंकि आदमी का यह ख्याल बन जाता है कि इससे परमात्मा प्रसन्न हो जाता है। तब ुरि

और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है और यदि आवश्यकता हुई तब दो–चार बकरे और एक साथ बलि व कुर्बानी कर देंगे। मुझे यह ध्यान में जब पहली बार एहसास हुआ तब मुझे बड़ी जोर की हंसी आई। घर पर पत्नी बच्चों ने देखा। जब मेरी हंसी नहीं रूकी तब वे डर गए। उन्होंने सोचा कि पागल हो गए। आज भी मैं जब इस पर विचार करता हूँ तब मुझे अभी भी आदमी पर हंसी आ ही जाती है।

धार्मिक लोग कहते हैं कि मैं को मारो। मैं से मतलब स्वयं से है और कहानियों में धार्मिक अघतारों व पैगम्बरों ने मैं को बकरे का प्रतीक बनाकर कहानी कही है। भाषा में कहा जाता है कि मैं को मारना चाहिए और कहानी में बकरे को प्रतीक बनाकर कहने से अर्थ यही होगा कि बकरे को मारो यानि मै। को मारो परन्तु हमारी समझ्स में अर्थ गंलत पकड़ लिया। काफी लम्बे समय से बेचारे बकरे पर छुरी व तलवार चलती आ रही है जिससे परमात्मा प्राप्ति का कोई दूर का भी रिश्ता व सवाल नहीं है।

इसमें बकरे का दोष इतना ही कि वह मैं अ अ, मैं अ अ करता रहता है।

"मै" की कुर्बानी व बलि का अर्थ भी स्वयं के शरीर व बकरे के शरीर से नहीं है। "मैं" की बलि का अर्थ स्वयं से है, आतमा से है न कि किसी के शरीर से है। स्वयं की बलि से परमात्मा पैदा होंगे। खुद की कुर्बानी से खुदा पेदा होंगे शरीर की कुर्बानी से नहीं। शरीर चाहे किसी का भी हों

इन कहानिकारों ने बड़ी भारी भूल की है ऐसा प्रतीत होता है। उन्होनें सोचा नहीं कि इतना भविष्य में क्या परिणाम होगा। कहानियों में बकरे मो मारने की बातों से धर्म व परमात्मा का कोई वास्ता नहीं है।

परन्तु एक दृष्टि से हमारे ऋषियों व पैगम्बरों ने ठीक किया है। उन्हें इस स्वचालित प्रक्रिया का पूरी तरह से पता था तभी यह प्रक्रिया उन्होंने अपनाई। जब धर्म लुप्त हो जाता है तब अज्ञान यानि अधर्म का पूरा बोलबाला होता है। परन्तु धर्म लुप्त होता है, कभी नष्ट नहीं होता है। नष्ट कभी कुछ होता ही नहीं–सिर्फ स्वरूप बदल जाते हैं। लुप्त धर्म इन्हीं प्रक्रियाओं से धीरे–धीरे प्रकट हो जाता है इतना प्रबल हो जाता है कि अधर्म को लुप्त होना पड़ता है। तब फिर से अधर्म को धीरे–धीरे धर्म की भांति प्रकट होना होता है। अतः इस

कारण यानि प्रक्रियाओं के तहत इन्हीं जगत का ढांचा चलता है। कभी धर्म लुप्त, कभ अधर्म लुप्त यह स्वचालित प्रक्रिया प्रकृति व परमात्मा के नियमों के तहत अपने आप चलती रहती है। यह सभी कहानियों के प्रभाव से होता है। कुदरत के अटल नियम है। इसलिए अभी इस अधार्मिक समय में उपरोक्त व्याख्याएं सही प्रतत हो रही है। इसी से ही ये प्रक्रिया चलती है। अन्यथा जब शरीर छोड़ने पर हमें तो सर्वप्रथम बकरा बनना है। इन्हीं प्रक्रिया के तहत हमें बकरे की योनि में कटना होगा ही। अतः यह अनिवार्य भी है। इसलिए हमारे ज्योतिष पंचाग में सबसे पहली राशि मेष है, मेष यानि बकरा व मेंढ़ा।

भैंरूजी व माताजी की पूजा हेतु एक बोतल शराब व एक बकरा बलि देने से पुत्र की प्राप्ति हो जाती हैं यह एक कहानी का वाकय है जो सत्य है और निरन्तर चलता आ रहा है। आज भी जिनके पुत्र नही है वे एक बोतल शराब व बकरा लेकर भैंरूजी व माताजी के मंदिर पहुंच जाते हैं।

यहां आदमी की समझ खो गई। आदमी वास्तविकता से भटक गया। हमारे मन्दिर साधना के स्थल हैं। यदि साधना करनी हो तब मन्दिर बहुत उपयोगी है। शराब मन्दिर में चढ़ाई जाए कोई महत्व नहीं। हम प्रसाद मन्दिर में चढ़ाते हैं भला उसका अर्थ क्या हो सकता है? यदि हम मन्दिर जाएं तब प्रसाद साथ ले जाएं जिसमें मीठा होना अनिवार्य है। ध्यान के बाद साधक को मीठा लेना साधना की दृष्टि से उत्तम है परन्तु प्रसाद का गलत आयाम से उपयोग हो रहा है। यदि प्रसाद में शराब मन्दिर में साथ ले जाए व ध्यान के बाद शराब का उपयोग साधक करें तब बहुत से अववय हमारे भीतर से बाहर आ सकते हैं व अभिमान मर सकता है।

शराब साधना के लिए उपयोगी है। इसलिए अंग्रेजी भाषा में शराब को स्प्रिट कहते हैं और आत्मा को भी स्प्रिट कहते हैं। दोनों शब्दों की एक ही स्पेलिंग है यानि शराब व आत्मा एक ही चीज हैं। दोनों के गुण धर्म एक से हैं। ध्यान के बाद साधक यदि शराब का उपयोग करें तब जो भी हमारी आत्मा में होगा वह बासहर आने लगेगा। शराब के सेवन से आत्मा का दरवाजा खुल जाता है और किसी वस्तु का दरवाजा खुलने पर उसमें जो कुछ होगा वही बाहर आएगा। परन्तु उसमें खतरा भी बड़ा है। जब आत्मा का दरवाजा खुलता है उस समय बहुत सी चीजें बाहर आती हैं। इसलिए आज शराब पीए लोग लड़ते-झगड़ते,

मारपीट व दंगा करते हुए देखे जाते हैं क्योंकि आत्मा का मुंह खुलने पर सभी प्रकार के आवेग, क्रोध, संताप, सुख जैसा भीतर होगा वह बाहर आएगा। यदि बिना साधना की दृष्टि व बिना जानकारी के शराब खतरनाक है क्योंकि जब आत्मा का मुँह खुलता है उसमें नई चीजें यानि नए आवेग भी भरने की पूरी–पूरी आशंका रहती है। प्रायतः बिना जानकारी के ऐसा ही होता है। इसलिए शराब खतरनाक सिद्ध हुई है।

शराब से साधक के आवेग बाहर हो सकते हैं और "मैं" मर सकता है। "मैं" के मरने पर पुत्र यानि ज्ञान, परमात्मा, पैदा हो सकता है।

शराब हमारे अभिमान यानि मैं को मारने में सहयोगी है। आप सत्य नहीं बोल सकते हैं, डरते हैं, शर्म आती है, परन्तु शराब पीकर आप सत्य बोल भी सकते हैं और कई लोगों ने शराब पीकर सत्य बोला है।

साधना करने के कई आयाम हैं। महाभारत सिर्फ साधना की अभिव्यक्ति है। साधना में साधक को किस–किस प्रकार अनुभव होते हैं कहानियों में प्रतीकत्मक रूप से कहा है जिसमें महाभारत विश्व में सर्वश्रेष्ठ है। एक साधक भी अन्तर कथा शुरू से लेकर अन्त तक की हैं इसी तरह सभी धर्मों के सम्प्रदायों में आपको कथाएं मिलेगी परन्तु हर एक उसे घटना की तरह समझ लेता है, लेकिन घटना नहीं है उसे गुणत्मक रूप से समझना होगा। घटना की तरह समझकर प्रत्येक का अनुकरण करना गलत होगा।

आज महाभारत को घटना की तरह समझ कर ही युद्ध होते हैं। प्रत्येक के मानस में है कि न्याय के लिए युद्ध जरूरी है। इसलिए आज विश्व में युद्ध होते आये हैं और हो रहे हैं।

किसी के भी शरीर को काटना इतना मुश्किल नहीं है लेकिन अपने या किसी अन्य या विषाद या विकार को काटना बहुत मुश्किल है।

कर्ण महाभारत में महा–बलि था और दुर्योधन के साथ था। कर्ण का जब अपमान हुआ तब दुर्योधन ने कर्ण को सम्मान दिया तब से कर्ण व दुर्योधन आपस में गहरे मित्र बनें। द्रोपदी स्वयंवर में कर्ण को मौका नहीं दिया। सूत पुत्र होने के कारण स्वयंवर के नियमों के विरूद्ध थां

कानों से सुनी हुई बातों का कभी अनुभव नहीं होता। चाहे कितना ही आप उसे स्मरण रख लेवें या किसी भी भाषा का सहारा लेकर समझ लेवें लेकिन अनुभव नहीं हो सकता। यह काम तो अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव व युधिष्ठिर का है इसलिए हमारे धार्मिक ग्रन्थों को दर्शन कहा है। दर्शन के लिए अर्जुन जरूरी है, कर्ण दर्शन नही कर सकता। परन्तु कर्ण द्वारा जो बातें हमारे भीतर प्रवेश करती हैं तभी हमें ज्ञान होता है अन्यथा आदमी गूंगा ही रह जाता है। इसलिए कर्ण अनिवार्य है। ऐसे कान तो पशुओं के भी होते हैं। लेकिन अर्थ के अभव में पशु नहीं समझ सकता। कर्ण के भाई का नाम शोर था। शोर यानि ध्वनि। हमारा जीवन संस्सार शब्दों से बना है। इसलिए भारतीय ऋषियों की कहानियों में कहा है कि सबसे पहले इस संसार में शब्द आया और उसके बाद सारी रचना हुई है। शब्द ध्वनि यानि शोर से बना है। हम सबने जिस प्रकार के शब्द की मान्यता दी है वह उसी प्रकार का शब्द ध्वनि है। इस शब्द ध्वनि से हमारा मानस भरा हुआ है। यानि हम शब्दों से भरे हुए हैं। हमारी मानसिकता में शबदों के अलावा कुछ नहीं है। यदि हमें कर्ण को मारना है तब साधना आवश्यक है कि कर्ण को कैसे मारा जाए?

हमारे मन्दिरों में पूजा अर्चना के समय नगाड़े, झालर, शंख व घंटियां बजाई जाती हैं। आज का मानव मन्दिर व इन पूजा अर्चना को भूल गया है। इसमें विकृति आ गई है क्योंकि मन्दिर हमारे ध्यान साधना करने के स्थल थे जो आज उनका उपयोग वैसे नहीं हो रहा है। मन्दिरों में लोग जाते हैं और भगवान से भीख मांगते हैं कि हमें नौकरी दे, बीमारी मिटाए, झगड़े जिताए, धन दे, संतान दे आदि मांगों को लेकर मन्दिर पहुंच जाते हैं। मदिर का पूजारी भी अपनी आमदानी का साधन समझकर आश लगाए बैठा है। क्योंकि सबके सब दुर्योधन से दुखी हैं और कर्ण भी उसके साथ है। कहते हैं कि मन्दिर का भगवान ये सुविधायें प्रदान कर देगा।

यदि साधना करनी है तब तो मन्दिर व उनकी सारी पूजा अर्चना की क्रिया उपयोगी है वरना कुछ भी होने वाला नहीं है। मन्दिर में बैठिए आंखे बन्द करके और ध्यान का प्रयास कीजिए, बहुत जल्द सफलता मिल जाएगी। क्योंकि हमारे दिमाग में हर समय विचार चलता रहता है, धन का मतलब ही निर्विचार होना है। यदि निर्विचार होना है तब तो शब्दों व विचारों से दूर रहना होगा। यदि आप मन्दिर में ध्यान के लिए बैठे हैं और ढोल, नगाड़ा, झालर, घंटियां आदि बज रही हैं तब आपका ध्यान जल्दी ही सफल हासेगा

क्योंकि इन नगाड़ा व झालर आदि की सिर्फ ध्वनि है, शब्द नहीं हैं, विचार नहीं हैं। आपका ध्यान ध्वनि पर जाएगा और ध्वनि आप में कहां तक व किस केन्द्र तक पहुंचती है। धीरे–धीरे अहसास हो जाएगा। मन्दिर में सारा आयोजन ध्वनि द्वारा स्वयं को जानने का सुलभ तरीका है। मन्दिर चाहे किसी का भी हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता है। मन्दिर में आप ध्यान में बैठे हैं तब एक मन्दिर वेसा ही आपके भीतर भी है। एक मन्दिर बाहर भी है जिसमें आप बैठे हैं तब एक मन्दिर वैसा ही आपके भीतर भी है। एक मन्दिर बाहर भी है जिसमें आप बैठे हैं। जब नगाड़ों आदि की ध्वनि होती है वह ध्वनि आपके भीतर वाले मन्दिर के कपाट खोल सकती है, क्योंकि वह सिर्फ ध्वनि है। हमारे भीतर एक जगह ऐसी है जहां ध्वनि नहीं है। वहां पूर्ण अध्वनि है। वरना हम सुन नहीं सकते। अध्वनि ही ध्वनि को सुनती है। अतः उस ध्वनि के माध्यम से अध्वनि तक पहुंचा जा सकता है। वही अध्वनि का केन्द्र ही सब कुछ है। जब पूर्णतः उस अध्वनि केन्द्र से परिचित हो जाए तभी आगे का द्वार खुलता है। अतः कर्ण को मारना अनिवार्य है। परन्तु कर्ण बहुत शक्तिशाली है। उस महाप्रभु की सहायत से ही वह मरता है। महाभारत में युद्ध के समय जब कर्ण के रथ का पहिया जमीन में धंस जाता है और कण उसे निकालने का प्रयास करता है तब श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि बाण चलाओ और कर्ण का अन्त होता है।

कान ध्वनि सुनने के उपकरण है। ध्वनि में शब्द हमने दिए हैं। हम सबने मिलकर शब्द की मान्यता दी है कि अमुक को हम यह कहते हैं कि इसका अर्थ यह होगा। यह हमारी मान्यता है। मान्यता हमारे दिमाग से संबंधित है, इसलिए बिना शब्द की ध्वनि जिसमें अर्थ नहीं हो, वह ध्वनि हमारे केन्द्र तक पहुंच सकती है। शब्द मस्तिष्क में ही अटक जाते हैं। इसलिए हमारे मन्दिरों में आरती के समय झालर, नगाड़े, घंटिया, शंख आदि बजाने का आयोजन रखा है। यह विधि साधना के दृष्टिकोण से सरल व सार्थक है।

साधना में साधक को सबकुछ समझकर चलना होता है। प्रकृति के नियमों में समझने की आवश्यकता नहीं है जैसे यदि कोई नशा या दवा पीता है या कुछ खाता है तो उसका असर बिना समझे ही पदार्थ अपना असर दिखाएगा। परन्तु साधना में ऐसा नहीं है। बिना समझे मन्दिर में झालर, नगाड़ा व घंटियां आदि सुनने से कोई फायदा नहीं है, उनकासे समझना अनिवार्य है तभी साधना में सफलता होगी। मसलन मन्दिर आप जाते हैं और राख की टिकी ललाट पर लगाते हैं। यदि आप उसका अर्थ नहीं समझे तब उसका

कोई फायदा नहीं हो सकता। राख की टिकी आपको व देखने वाले को यह बताती है कि अभिमान न कर सभी राख होने वाला है। साधना के लिए यह समझ अनिवार्य है। हर समय याद रहे कि हमारा शरीर राख होने वाला है। अन्यथा राख शरीर के लपेटे या राख को पानी में घोलकर पीये कोई फायदा नहीं होगा। सिर्फ ना समझी शाबित होती है।

अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु महाभारत में चक्रव्यूह में फंस जाता है, उसे चक्रव्यूह से निकलना नहीं आता था। कहते हैं कि अभिमन्यु चक्रव्यूह की रचना करना अपनी माँ के पेट में ही सीख गया था लेकिन चक्रव्यूह से निकलना नहीं सीख पाया था।

हमारी पौराणिक कहानियों में ज्ञान का प्रतीक पुत्र से व बुद्ध का प्रतीक पत्नी से लिया गया है। इसलिए जितनी प्रायः कहानियां हैं उनमें पुत्रों की समस्या पेदा की गई है। महाभारत में राजा शान्तनुं के सात पुत्रों को गंगा में बहाना–कृष्णलीला में कंस द्वारा सात बच्चों को मारना बताया गया है।

हमारे सूक्ष्म शरीर में सात केन्द्र धर्म शास्त्रों ने बताये हैं और यह भी कहा गया है कि इन केन्द्रों को ध्यान तपस्या द्वारा तोड़ा जाता है। इन्हीं सातों केन्द्रों में हमारे द्वारा सुन–सुनकर ज्ञान भरा हुआ है। अब यदि इन केन्द्रों को तोड़ना है या खोलना है तब पुत्रों को मारने जैसा ही है क्योंकि यह सब बाहरी ज्ञान होता है उसे नष्ट करना अनिवार्य है। स्वयं का ज्ञान होना अनिवार्य है।

इसे इस प्रकार से भी समझा जा सकता है कि एक गोद लिया पुत्र होता है और एक स्वयं का पुत्र होता है इन दोनों में बड़ा फर्क ह। उतना ही फर्क होगा कि एक स्यं से पैदा किया हुआ ज्ञान व दूसरा सुना हुआ ज्ञान।

गोद पुत्र लेने पर माँ को पुत्र का अनुभव नहीं होता। वह माँ नहीं बन सकती और वह पुत्र भी नहीं हो सकता क्योंकि पुत्र जब पैदा होता तब अकेला पुत्र पैदा नहीं होता। साथ में माँ भी पैदा होती है। गोद पुत्र में माँ कोई अनुभव नही हासेता। क्योंकि स्वयं के पुत्र होने पर उसे नौ माह का अनुभव होगा। प्रसव पीड़ा से गुजरेगी–अपना दूध पिलाएगी व धीरे–धीरे उसका लालन–पालन करेगी। लेकिन गोद पुत्र में ऐसा कुछ नहीं है। सिर्फ बाहर से लिया हुआ ज्ञान है जो अज्ञान से भी बतर है।

इसलिए जब ज्ञान को पुत्र की संज्ञा देते हैं तो यह सही है। बाहरी ज्ञान सिर्फ अभिमान का सूचक होता है कि मैं कुछ जानता हूँ परन्तु जानता कुछ नहीं हूं सिर्फ भ्रम होता है, यही अभिमान है। अतः इसी अभिमान को साधना के पथ पर तो मारना ही होगा।

बाबा रामदेव की कहानी में अजमल जी के पुत्र नहीं था उनके पुत्र की समस्या थी। अज का मतलब बकरा होता है और मल का अर्थ गन्दगी। हम सब का शरीर अजमल ही है। अजमल की पत्नी मैना देवी थी – मैना का आशय बुद्धि से है। क्योंकि ज्ञान हमेशा बुद्धि में ही उपजता है। अजमल जी व मैना देवी दुखी थे कि पुत्र नहीं हो रहा है एक समस्या है। हमारी धार्मिक परम्परा में कहते हैं कि आदमी के पुत्र होना अनिवार्य है। मरने पर पुत्र पिण्ड दान करके मोक्ष यानि मुक्ति दिला देता हैं यह बात इस प्रकार भी सही है कि जब बुद्धि में ज्ञान पैदा होगा तब स्वतः मुक्त हो जाएंगे। स्वयं पिण्ड दान यानि फिर किसी अन्य शरीर में नहीं जाएंगे क्योंकि जब सभी प्रकार के पदार्थ का दान ज्ञान होने पर हो जाता है और मुक्ति निश्चित है।

परन्तु जैसा हम पुत्र को समझ रहे हैं वैसे पुत्र की बात कहानियों में नहीं है। अजमल जी को भगवान ने स्वयं वचन दिया था कि हम तुम्हारे घर पुत्र की भांति पैदा होंगे यानि स्वयं बुद्धि से ज्ञान पैदा होने की बात हैं

बाहर से लिया गया ज्ञान गोद पुत्र की तरह होता है परन्तु हम उन्हें फेंकते नहीं क्योंकि हमें तो सिर्फ यही ज्ञान प्रिय है। आज किसी ने शास्त्र पढ़ रखा है, किसी ने अन्य प्रकार से ज्ञान इकट्ठा कर रखा है उस ज्ञान का आदमी को अभिमान रहता है। परन्तु साधना में अभिमान को सबसे पहले गिरना पड़ता है तब आगे कुछ संभव है।

स्वयं का ज्ञान होने पर अभिमान मर जाता है जब तक स्वयं का वही होगा अभिमान नहीं मरेगा।

महाभारत में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कौरवों व पाण्डवों के गुरू थे परन्तु युद्ध में पाण्डवों के विरूद्ध थे। कृपाचार्य सरद्वान ऋषि के पुत्र थे। सरद्वान ने जंगल में एक अप्सरा को देखा उनका तेज भंग हुआ और उनके बीजकरण सरकण्डों के समुदाय पर गिरे और दो भागों में बंट गए। उनसे एक पुत्र कृपाचार्य व एक पुत्री कृपी हुई जिसे भीष्म के सैनिक

द्वारा शान्तनुं को दिया जिन्होंने इनको पालपोष कर बड़ा किया। कृपाचार्य धनुर्विधा में निपुण हुए और उनकी बहर कृपी की शादी द्रोणाचार्य से हुई

द्रोणाचार्य की उत्पत्ति भारद्वाज नाम के ऋषि से हुई। भारद्वाज गंगा तट पर स्नान के लिए गए और वहां एक अप्सरा को नहाते देखा और उनका तेज भंग हुआ और उन्होंने उसे एक घड़े में रख दिया। उस घड़े में से जो पैदा हुआ वह द्रोणाचार्य था। द्रोणाचार्य की शादी कृपाचार्य की बहिन कृपि से हुई और उससे जो संतान पैदा हुई उसका नाम अश्वत्थामा था।

सरद्वान ऋषि से आशय हमें दूसरों के मस्तिष्क में मरे ज्ञान से है, जो बाहर का ज्ञान अर्जित है उसे लोग बांटते हैं। अप्सरा का आशय आकांक्षाओं से है कि गंगा किनारे असरा को देखा। यहां गंगा का आशय भी बुद्धि से है। वहां पर अप्सरा को देखना एक सुन्दर कल्पना है। उसके लिए दूसरे से जो ज्ञान मिलता है उसे हम कृपा का पात्र मानते हैं कि आपने बड़ी कृपा की। आपने अपने भीतर कृपाचार्य पाल लिया क्योंकि हर आदमी एक दूसरे का कृपा पात्र है। कृपाचार्य व कृपी को शान्तनुं ने पाला है यानि हमारे सूक्ष्म शरीर के सात केन्द्र शान्तनुं हैं ने इन दोनों को पाल पोषकर बड़ा किया है। हमें बचपन से ही ज्ञान मिलना शुरू हो जाता है पवह सिर्फ घास, फूस के बीज व रस आदि से आता है और उसी का ही हमें ज्ञान होता हैं सरद्वाज की तरह भारद्वाज भी ऋषि थे। सर का आशय मस्तिष्क व भर का आशय कुछ भरा हुआ है। भारद्वाज ने भी गंगा तट पर अप्सरा देखी और वही हाल हुआ जो सरद्वाज का हुआ है। भारद्वाज ने अपने बीज कणों को घड़े में रख दिया और उससे पुत्र पैदा हुआ जो द्रोणाचार्य। द्रोण का आशय घड़े से है। मनुष्य का मस्तिष्क घड़े के समान है और उसमें जब बाहर का ज्ञान भर जाता है व द्रोणाचार्य है। द्रोणाचार्य भी धनुर्विद्या में निपुण थे।

धनुर्विद्या का आशय मूंह द्वारा वाणी के तीर फेंकना क्योंकि भीतर ज्ञान के तीर होते हैं और हमारे मुंह के ऊपर होंठ धनुष के आकार का है ये दोनों आचार्य धनुर्विद्या थे। अतः आज का पढ़ा लिखा आदमी बोलने में साधारणजन से श्रेष्ठ होता है क्योंकि द्रोणाचार्य व कृपाचार्य ने ही हमारी भाषा की लिपि तैयार की है। लिपि चाहे किसी भी भाषा की हो यह

हमारे द्रोणाचार्य व कृपाचार्य के हथियार है जिसे आज सभी को पढ़ लिखकर सिखना ही होता है।

एकलव्य द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर गुरू कृपा से धनुर्विद्या में निपुण हुआ कि पांच बाण एक साथ कुत्ते के मुंह में मार देता है। ऐसा आश्चर्य देख द्रोणाचार्य दंग रह जाते हैं और एकलव्य से मिलने पर उससे अपनी मूर्ति के कारण गुरूदीक्षा मांगते हैं जिस पर एकलव्य अपना अंगूठा काट कर दे देता है।

स्वयं का ज्ञान इतना वजनी होता है कि व्यक्ति एक बात में कई बातें कह जाता है जैसा एक तीर दो निशाने। परन्तु यहां एक तीर व पांच निशाने। एकलव्य का आशय मात्र ध्यान से है, एक ही लय। और एक ही लय से जो पैदा होता है वह सर्वश्रेष्ठ होता है। एकलव्य ने भी द्रोणाचार्य को गुरू माना था। गुरू तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि बिना भाषा के हम ज्ञान प्रकाशित नहीं कर सकते इसलिए कि हमारे भीतर भाषा नहीं है। वह भाषा बाहर से सीखी जाती है। यह द्रोणाचार्य व कृपाचार्य का ही काम भाषा व लिपि निर्मित करना। गुरूदीक्षा में एकलव्य ने अपना अंगूठा काटकर दे दिया। अनपढ़ आदमी अंगूठा लगाते हैं। पढ़ लिख जाने के बाद अंगूठा नहीं लगाते सिर्फ हस्ताक्षर करते हैं।

हमारी शिक्षा आदर्श नियम हमें यह सिखाते हैं कि बेईमान किस प्रकार हुआ जा सकता है? शिक्षा बेईमान होने का प्रशिक्षण है। शिक्षित होते ही अंगूठा लगाना समाप्त क्योंकि वह तो द्रोणाचार्य ले लेता है कि अब हस्ताक्षर करो। अंगूठे की जरूरत नहीं। वह द्रोणाचार्य को दीक्षा में दे दिया।

द्रोणाचार्य ने एकलव्य को धनुर्विद्या नहीं सिखाई इसलिए कि वह शूद्र जाति का था। शूद्र जाति का धनुर्विद्या नहीं सीख सकता। शूद्र जाति के आदमी को मन्दिर में प्रवेश करना भी मना है ऐसी धर्म शास्त्रों की कहानियों में व्यवस्था है। जैसा कि कर्ण को द्रोण्पदी स्वयंवर में शामिल नहीं किया था।

यहां साधना की दृष्टि से शूद्र जैसा आप समझ रहे हैं वैसा नहीं है। हमारे यहां मेघवाल, सांसी, हरिजन, चमार आदि कई जातियां शूद्र कहलाती हैं। साधन की दृष्टि में चमार व सांसी वह होता है जिसे चमड़ी व मांस का अच्छा ज्ञान होता है और वह उसके

लिए लालायित रहता है। यहां चमड़ी व मांस का आशय मौन प्रक्रिया से है। जो सेक्सी होते हैं वे साधक नहीं हो सकते। वे सिर्फ चमड़ी व मांस पर ही अटक जाते हैं। उनका लक्ष्य औरत की चमड़ी व मांस मज्जा से है। रूप लावण्य से है। आकार प्रकार व रंग से है। जिनकी दृष्टि औरत के सौन्दर्य पर है वह चमड़ी व रंग व आकार से आगे नहीं जा सकती है। वे लोग अपने भीतर के मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। यदि भीतर प्रवेश करना हो तो एकलव्य बनना पड़ेगा। जो मरे हुए पशुओं की खाल निकालते है मांस, चमड़ी व हड्डियों का व्यापार करते हैं। वे वैसे नहीं होते हैं यह सिर्फ प्रतीक उन लोगों के लिए लिया गया है जिनकी नजरें खराब होती हैं वे हय के योग्य हैं। परन्तु कार्य करने वाले हय नहीं होते हैं, परन्तु समझा ऐसा जा रहा है इसलिए द्रोणाचार्य ने एकलव्य को शूद्र जाति का होने से शिष्य नहीं बनाया। जबकि उनमें कोई खराबी नहीं थी इसलिए तो उसकी धनुर्विद्या से द्रोणाचार्य को चकित होना पड़ा।

इसलिए गहरी समझ यह कहती है कि आदमी चाहे किसी भी जाति का क्यों न हो यदि वह सौन्दर्य व सैक्स की दृष्टि से चमड़ी व मांस हड्डियों को ढूंढता है तो वही शूद्र जाति का है।

सैक्सी साधना नहीं कर सकता क्योंकि वह शूद्र जाति का है, वह मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकता परन्तु ऐसे लोगों को कैसे पहचानेंगे। वे बाहर के मन्दिरों में प्रवेश करते हैं तब भी वही ढूंढते हैं चमड़ी का सौन्दर्य व मांस मज्जा । इसलिए यहां बाबा रामदेव जी की एक बड़ी कहावत चरितार्थ है जो आज मैं विचार करता हूँ तब मुझे शत प्रतिशत सही प्रतीत हो रही है।

कहते हैं कि बाबा रामदेव जी को "जो भी मिल्या सब ढेढ ही मिल्या" मै। आज की सभ्य सोसाइटियों में देखता हूं जहां विद्वान लोग भी और हर प्रकार के व्यक्तियों से सम्पर्क होता है तब पाता हूँ कि अधिकतर लोगों की मानसिकता सैक्सी है। एक मायने में मैं ज्यादातर अपने मिलने वालों को ढेढ़ की ही संज्ञा दे सकता हूँ। चमार व सांसी की संज्ञा देता हूं चाहे वह जाति से ब्राह्मण व क्षत्रिय क्यों न हो। क्योंकि उनकी बातें व दृष्टि सिर्फ औरत के चारों ओर घूमती रहती है। उनका हंसी मजाक व दिनचर्या वहीं पर रूकी रहती हैं इसलिए उन्हें सांसी, चमार, ढेढ़ आदि की संज्ञा देना गलत नहीं है। इसलिए मै तो जहां

भी जाता हूँ और पाता हूं कि सांसी, चमारों व ढ़ेढों से घिरा हुआ हूँ। ये सभी प्रायः कामनाओं से घिरे हुए हैं, काम के लिए सक्षम नहीं है परन्तु इन सबकी मानसिकता विकृत है।

द्रोण का आशय पिटारा। एक प्रकार घड़े के समान है जिसमें बाहर प्रकृति का ज्ञान भरा रहता है। इसलिए कहते हैं कि गुरू के बिना ज्ञान नही होता। हाँ, यदि आपको प्रकृति यानि पदार्थ के बारे में ज्ञान गुरू ही दे सकता है। आप अकेले खोजोगे तो संभव है जल्दी सफल नहीं हो सकोगे। परन्तु परमामा के बारे में, आत्म ज्ञान के बारे में गुरू बाध है। आत्मा व परमात्मा का ज्ञान गुरू नहीं दे सकता है। उसके लिए तो यदि बाहर से भीतर का ज्ञान लिया हुआ है तो भी उसे काटना व फैंकना होगा वरना स्वयं का ज्ञान संभव नहीं है। इसलिए गुरू महाभारत में कौरवों के पक्ष में रहते हैं।

गुरू का मतलब गन्दगी "रू" का आशय आत्मा यानि गुरू का मतलब गल्त आत्मा से है। इसलिए महाभारत में दोनों को मारना ही पड़ा क्योंकि वे कौरवों के पक्ष से कृष्ण के विरूद्ध लड़ रहे थे। इसलिए गुरू परमात्मा के बारे में ज्ञान नहीं दे सकता। पदार्थ यानि प्रकृति के बारे में ही ज्ञान दे सकता है। आपको कोई कला सिखनी है तब गुरू चाहिए। अक्षर ज्ञान सिखना है तब भी गुरू चाहिए चाहे किसी भी प्रकार का काम आपको सीखना है तब गुरू चाहिए। यदि आपको बेकाम में होना है तो बाधा होगी।

द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा कृपी से पैदा हुआ था। हमारा बाहर से लिया गया ज्ञान हमारे में द्रोण की तरह होता है तब उससे एक परिणाम निकलता है कि फिर हमारी मनोदशा भांति-भांति की रूप रेखाएं बनाती है और कामनाओं में परिणित होती है। अश्व का मतलब घोड़े से है हमारी मनोदशा घोड़े की गति की तरह दौड़ती है जो थमने का नाम नहीं लेती हैं। यह पैदाईश द्रोणाचार्य की है। विचारना चौबिसों घटों रहता है। इसलिए हमारे घड़े में भरा ज्ञान उड़ेना होगा। उस घड़े को तोड़ना होगा। तभी कुछ संभव है। अतः अश्वत्थामा के मरने पर द्रोणाचार्य मर सकता है। अश्व के समान गतिशील मन व हाथी की भांति ताकतवर भी है। युद्ध में कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर से कहलाना की अश्वत्थामा मारा गया तब यह सुनने पर धृष्द्युम्न द्वारा द्रोणाचार्य मारा जाता है। धृष्टद्युम्न द्रोपदी का भाई था। धृष्टद्युम्न का उस मनोदशा से है जो बाहरी ज्ञान के आवरण है।

युधिष्ठिर के द्वारा कहलाना इसलिए था कि युधिष्ठिर का आशय पुरूषोत्व शक्ति से है। जो शिवलिंग का प्रतीक भी है। शक्तिशाली व न्याय प्रिय है। इसलिए प्रत्येक जन्म लिंग द्वारा होते हैं और यह हमेशा न्याय करता है। गलत जगह नहीं भेजता है। किसी भी योनि में जाना होगा जो उसके अनुप व उनके योग्य होगी। लिंग कभी भी किसी को गलत जगह नहीं भेजता। इसलिए युधिष्ठिर को धर्मराज भी कहते हैं और सही न्याय करते है। यह प्रकृति की स्चालित प्रक्रिया हैं

युधिष्ठिर ने कहा कि "अश्वत्थामा मारा गया इसका आशय है कि काम के प्रति जो धारणा है और उससे जो कामना बनती है, वह साधना से साधक की क्षीण हो जाती है तब सारा अनुभव जो काम व कामनाओं के बारे में सुन रखा था कि धारणा भी वह मिट गई, समाप्त हासे गई तब उस ज्ञान से विच्छेद होना होता है। परन्तु मनोदशा फिर भी जिन्दा रहती है। काम समाप्त हो सकता है परन्तु कामना रहती"। आश्वत्थामा जिन्दा होता है ताकतवर नहीं होता सिर्फ घोड़े की तरह गतिशील होता है अतः काम समाप्त हो जाता है काम वासना कायम रहती है। ताकत हाथी के समान थी जो हाथी मारा जाता है। अश्वत्थामा दुर्योधन के साथ है क्योंकि ये सब धन के बलबूते पर कायम रहती है।

साधना से साधक में सुप्रीम ऊर्जा का होना ही कृष्ण, राम, बाबा रामदेव आदि से है। कृष्ण कोई व्यक्ति नहीं थे। कृष्ण एक एनर्जी है जो सब में पैदा हो सकती है। जैसा कि मैंने पिछले अध्याय में भारत का मानचित्र एक आदमी की तरह है जैसा कि उसके हृदय में कृष्ण व राम पेदा हो सकते हैं। जब कृष्ण साधक के शरीर में पैदा होते हैं जब दूसरे कषाय मर थोड़े हो जाते हैं क्योंकि कृष्ण तो बहुत काल बाद साधक के शरीर में पैदा होते हैं। कृष्ण पाण्डवों के पक्षधर हैं और पांचों पाण्डवों का हमारा शरीर है जिसमें अर्जुन महाबली है और कृष्ण अर्जुन के रथ के सारथी बनते हैं।

परन्तु अर्जुन कृष्ण से परिचित नहीं है। कृष्ण अर्जुन की मां कुन्ती यानि काया का भाई है जो कारण शरीर में पैदा होता है और सूक्ष्म शरीर को तोड़ने के लिए अर्जुन की मदद करते हैं। अर्जुन के परिचित उसके चचेरे भाई आदि जो आदमी की विकास की वृत्तियां है उसे अर्जुन अच्छी तरह से परिचित है और उनसे अर्जुन अच्छी तरह से परिचित है और उनसे अच्छा लगाव भी है। काम–क्रोध आदि सब उसके परिवार के हैं। अनेक

जन्मों तक साथ–साथ रहे हैं। चचेर भाईयों से हमेशा प्रेम रहा है। सभी विकार चचेरे भाईयों की तरह प्रिय है। इन्हीं वृत्तियों की वजह से ही बार–बार बनवास भुगतना पड़ रहा है। बार–बार जन्मना व मरना पड़ता है।

साधक के पास जब सुप्रीम एनर्जी पैदा होती है तब विकारों से लड़ने की बात याद आती है। अब शरीर रूपी रथ को कृष्ण ही हांकता है। अर्जुन यानि आंखें जो मन से सीधा संबधं रखती है। किसी की आंखों में देखने से भी बहुत कुछ आभास हासे जाता है क्योंकि आंखें मन व आत्मा के अति नजदीक में रहती हैं।

युद्ध के मैदान में अर्जुन का रथ खड़ा है दोनों ओर की सेनाएं लड़ने को तैयार है परन्तु जो अर्जुन सामने अपने ही लोगों को देख घबरा जाता है। साधक चाहे कितना भी तपस्वी क्यों न हो। कृष्ण भी साथ क्यों न हो लेकिन साधक अपनी परिचित वृत्तियों को तोड़ने मे हिचकिचाएगा। साधक तत्काल यह दुसाहस नहीं कर सकता। इसलिए सबसे पहले कृष्ण ज्ञान योग का उपदेश देते हैं क्योंकि ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है। और फिर पूरे अट्ठारह अध्याय तक का उपदेश देते हैं।

यह सब साधक की अन्तर मनोदशा व आत्मदशा है। सारी सेना साधक के भीतर ही है। कृष्ण ही भीतर है व धृतराष्ट्र भी भीतर है परन्तु युद्ध स्थल से दूर है क्योंकि यह कुरूक्षेत्र में है। हमारी कामनाओं के क्षेत्र में है जहाँ कामना हमारे में पैदा होती है।

कृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार करते हैं परन्तु साधक मोहवश वृत्तियों कासे मारना नहीं चाहता है। साधक के हाथ पाँव काँप जाते हैं परन्तु एनर्जी दिलासा दिलाती है व वास्तविक ज्ञान व कर्म से परिचय करवाती है। काफी प्रयास के बाद दसवें अध्याय में एनर्जी अपना पूरा स्वरूप दिखाती है तब साधक को पूरी तरह ज्ञान समझ आता है और श्रद्धा पैदा होती है। वास्तविक स्थिति से साधक परिचित हो जाता है और आखिर युद्ध में एक–एक करके सभी कौरव सेना मारी जाती है। परन्तु दुर्योधन फिर भी बचा रहता है।

ऐसी अवस्था में फिर साधक किसी वृत्ति के वशीभूत न रहने पर वह दुर्योधन पर आश्रित नहीं रहता। फिर साधक जहां चाहे इस शरीर से बाहर निकलकर विचरण कर सकता है क्योंकि हमें हमारी वृत्तियों ने ही उस शरीर में जकड़ रखा है वरना हम स्वतन्त्र

है। फिर साधक को भोजन की आवश्यकता नहीं क्योंकि साधक का आनन्द ही भोजन है। वैस भोजन व यात्रा के लिए धन की आवश्यकता होती है परन्तु जब साधक स्वतन्त्र हो जाता है तब धृतराष्ट्र के अधीन नहीं होता है।

भीम यानि पदार्थ दुर्योधन को मारता है। जब हमारा शरीर स्पर्शहीन हो जाए तब दुर्योधन को मरना ही होता है। फिर किसी प्रकार के धन की आवश्यकता नहीं रहती है।

इसलिए भगवान कृष्ण ने गीता के चौथे अध्याय के श्लोक दस में कहा है कि :–

वीतरागमयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।

बहवो ज्ञानतप सा पूता मदभावभागताः ।।

पहले भी आसक्ति भय और क्रोध रहित, मेरे साथ तादात्म्य को प्राप्त हुए। मेरी शरणगत हुए बहुत से लोग मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं।

इसी दोहे में अभिमान के मरने की बात कही है। अभिमान के मरने पर आदमी क्रोधमय और राग विराग से हमेशा के लिए मुक्त हो जाता है। परन्तु क्रोध, भय, ईर्ष्या आदि अभिमान के आभूषण है। अतः अभिमान के मरने पर अनन्य भाव से मेरे में स्थित रहने वाले, मेरे शरण हुए बहुत से पुरूष ज्ञान रूप तप से पवित्र हुए मेरे स्वरूप यानि शरीर को प्राप्त हो चुके हैं।

प्रथम बात तो यह है कि शरीर को प्रापत हो चुके हैं और भी हो सकते हैं। यहाँ शरीर का आशय भारत यानि आदमी। इस धरती पर प्रत्येक आदमी में कृष्ण के अवतार होने की पूरी संभावना है। यदि कृष्ण के शरीर को प्राप्त करना है तब आदमी का होना अनिवार्य है, और यह हमेशा भारत देश में होता है और हुआ है। इसलिए सारे विश्व में भारत देश धार्मिक कहलाता है।

द्वितीय बात कि कृष्ण का शरीर यह जासे पूरा ब्रह्माण्ड यह कृष्ण का शरीर है। यह शरीर परमात्मा का है। यह जो विस्तार है, यह जो ब्रह्म है जो प्रतिक्षण फैलता ही चला जाता है जिसका कोई अंत नहीं है। हम आत्मा को तो प्राप्त हैं ही सिर्फ शरीर का भ्रम है। जब हम अपनी आत्मा को पहचानेंगे तब शरीर को भी साथ–साथ पहचान लेंगे। यदि हमें

हमारे शरीर का भ्रम टूट जाए तब यह सारा ब्रह्माण्ड शरीर लगने लगेगा और जहाँ केन्द्र है वही कृष्ण आत्मा है। अतः जब पूरा ब्रह्माण्ड शरीर हो जाए तब आत्मा से परमात्मा हो जाता है। यही कृष्ण कह रहे हैं। कृष्ण परमात्मा है। हम कृष्ण के हिस्से तो हैं ही सिर्फ शरीर की भूल है।

हमें हमारा शरीर क्यों लगता है? सिर्फ अभिमान के मारण। अभिमान टूट जाए शरीर की सीमा समाप्त हो जाती है। हमें शरीर की सीमा अपनी चमड़ी तक ही लगती है। यह शरीर मेरा है, अभिमान के कारण ऐसा लगता है। राग, भय, क्रोध के कारण ऐसा लगता है। इसलिए श्रीकृष्ण ने कहा है वीतराग भय क्रोधा। वीतराग से आशय राग व विराग के पार। वीतभय का मतलब भय व हर्ष के पार, वीतक्रोध का भी आशय क्रोध व शांति के पार।

शब्द के दो आयाम होते हैं परन्तु तीसरा आयाम भी है। वह है वीत। वीतराग का आशय राग विराग के पार। राग का आशय किसी चाह और विराग का आशय किसी से घृणा जिसे आप चाहते है। कल उससे घृणा भी कर सकते हैं। राग का आशय किसी के पीछे भागना, विराग का आशय उससे दूर भागना। दोनों का आशय एक ही है। क्योंकि जो जिसकी तरफ भागता है और जिससे भागता है उन दोनों का विषय केन्द्र एक ही है। किसी की ओर भागे या दूर भागे केन्द्र दोनों का एक ही होगा। राग स्त्री के पीछे भागता है। विराग स्त्री से दूर भागता है। लेकिन दोनों का केन्द्र एक ही है।

मेरे एक दोस्त अविवाहित है। वे स्त्री से दूर रहते हैं। शादी करना नहीं चाहते। माता–पिता दोस्तों ने बहुत प्रयास किया परन्तु वे शादी के लिए तैयार नहीं हुए। वे विराग की स्थिति में चले गये। स्त्री के प्रति उन्हें विराग हो गया। परन्तु वीतराग नहीं हुए क्योंकि वीतराग तीसरी स्थिति है। वीतराग तीसरा आयाम है कि न राग न विराग हो। प्रेम करें या घृणा करे यह राग व विराग है। क्योंकि दोनों का ध्यान एक ही केन्द्र की तरफ है।

शादी न करना कोई इस बात की सूचना नहीं है कि वह विरागी है। शादी करके भी वीतरागी हुआ जा सकता है, और शादी करने पर रागी है यह भी इस बात की सूचना नहीं है कि जिसने शादी की है व रागी है और जिसने शादी न की है वह विरागी है।

परन्तु वे सज्जन वार्तालाप के दौरा स्त्री का उदाहरण अवश्य देते हैं। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि अवश्य ही उन्हें स्त्री की कहीं पीड़ा है। क्योंकि जब हमारे शरीर के जिस किसी भी भाग पर दर्द हो तब उस जगह हमारा ध्यान बार–बार अवश्य जाएगा। यदि पीड़ा अंगूठटे में नहीं है तब अंगूठा कभी याद नहीं आएगा। यदि अंगूठे में पीड़ा है तब वह बार–बार याद आता रहेगा। परन्तु वीतरागी व वीतभय व वीतक्रोध के लिए दोनों स्थिति समान है। वह दोनों आयामों के प्रभाव में नहीं होता है।

राजा जनक वीतरागी थे। तभी उनके सीता पुत्री हुई। सीता का आशय अद्वेत से है। जहाँ दो नहीं है। दो का भाव भ्रम है। हम अलग हैं यही हमारा भ्रम है। वास्तव में हम अलग नहीं हैं। अद्वेत यानी सीता प्रतीक है। यह राजा जनक की पुत्री इसलिए है कि जहां सात केन्द्र हमारे शरीर में रीढ़ की हड्डी में है और प्रथम केन्द्र पर ही शक्ति है। रीढ़ की हड्डी का आकार भी धनुष की तरह है। सातों केन्द्रों को नष्ट करने पर सुप्रीम एनर्जी पैदा होती है लेकिन रीढ़ तो कायम रहती है। रीढ़ को तोड़ना ही सीता स्वयंवर है यानि स्वयं की शक्ति से संबंध होना। यह तभी संभव है जैसे राजा जनक की तरह वीतरागी हो।

एक समय में किसी ने राजा जनक से प्रश्न किया कि आपके पास राजपाट है। सब तरह से साधन सम्पन्न हैं। राजकाज आदि में लिप्त हैं। आप वीतरागी कैसे हो सकते हैं ? तब राजा जनक ने उस सज्जन को भरे दरबार में घी का कटोरा पूरी तरह भर कर दिया और कहा कि नृत्य करते चलते हुए दरबार में एक पूरा चक्कर लगाकर आओ । घी की एक बूंद भी नीचे नहीं गिरनी चाहिए वरना ये प्रहरी तुम्हारी गर्दन तलवार से काट देंगे। उस सज्जन ने कहा कि मैं अपना प्रश्न वापिस लेता हूँ, मुझे नहीं पूछना प्रश्न। परन्तु राजा जन9क ने कहा, नहीं! प्रश्न पूछा है तब तो उत्तर लेना ही पड़ेगा। सज्जन ने कटोरा हाथ में लिया और बड़ी सावधानीं से धीरे–धीरे रवाना हआ। दरबार में नृत्य करते हुए चल रहा था। प्रहरी नंगी तलवारें लिए उस सज्जन के साथ चल रहे थे। उनका ध्यान कटोरे पर पूरी तरह से आसीन हो गया। आजू–बाजू व अन्य किसी ओर उनका ध्यान नहीं रहा। तलवारों के भय ने उसये इस कृत्य के लिए मजबूर कर दिया था। अन्य कोई ध्यान नहीं था सिर्फ ध्यान के चक्कर पूरा हुआ। सज्जन के जान में जान आई। राजा जनके ने पूछा क्यों दरबार में नृत्य चल रहा था ? कैसा था? अन्य क्या–क्या हो रहा था कुछ पता है?

सज्जन ने कहा महाराज मुझे अपना ही पता नहीं रहा नृत्य आदि तो सब दूर की बात है। तब राजा जनक ने कहा कि वीतरागी वहीं हो सकता है जो स्वयं में स्थापित हो जाता है।

वीतराग स्थिति अभिमान के मरने के स्थिति है। इसी दोहे में भगवान कृष्ण ने कहा है कि अनन्य भाव से मेरे में स्थित रहने वाले, मेरी शरण हुए.......... अनन्य भाव का आशय बिना किसी कामना के होता हैं समझना सरल नहीं होगा। बिना कामना के कोई काम नहीं होता। हम प्रार्थना करते हैं उनमें कामनाएँ होती है। इच्छाएँ होती हैं इसलिए कहा गया है अनन्य यानि दूसरा नहीं समझ कर स्वयं को कृष्ण ही समझकर जहाँ दूसरे का भाव न हो। और मेरी शरण में हुए यानि फिर भी दूसरे का भाव झलकता है क्योंकि शरण हमेशा दूसरे की ही होती है परन्तु यहाँ दोनों स्थितियां अनन्य भाव की ही है। जैसे स्वयं, स्वयं की शरण में हुए बहुत से मेरे शरीर को प्राप्त हो चुके हैं। क्योंकि वहीं कृष्ण सभी में है। वेदव्यास जी ने साधना से परिपक्व होकर महाभारत व कृष्णलीला में स्वयं का परिचय दिया। स्वयं का परिचय ही कृष्ण का परिचय है। हमारे शरीर की सीमाएँ है परन्तु कृष्ण के शरीर की सीमाएँ नहीं है।

हमें जो आकाश दिखाई दे रहा है जो असीम है उसकी कोई सीमा नहीं है। यह हमारे पास है और हमारे से दूर चारों तरफ दिखाई देता है। दिन में सूर्य है, परन्तु आकश नीला दिखाई देता है। जहां सूर्य की किरणें नहीं पहुंच रही है, जो नीलापन है, दिखाई देता है उससे आगे अन्धेरा है। यह नीलापन अन्धेरे की शुरूआत है। आगे भी अनन्त असीम आकाश है। आकाश पृथ्वी के समीप, जहाँ पाँच सौ कि.मी के करीब हवा की पर्त पृथ्वी के चारों ओर है और उससे आगे भी अन्य गैसों की पर्त, दरपर्त असीम है। वही असीम हमारे से भी जुड़ा हुआ है। हमारे भीतर भी आकाश है। हम सांस लेते हैं वह बाहरी आकाश से हमारे भीतर आकश में प्रवेश करता है और फिर हम बाहर के आकाश में सांस छोड़ते हैं। हमारे दोनों आकाशों का संबंध हमारी सांस है। हमारी सांस खत्म हुई हमारा शरीर समाप्त हुआ। परन्तु जब हमारी सांस चलती है तब हमारा संबंध पूरे ब्रह्माण्ड से है अतः हमारा शरीर भी उसी ब्रह्माण्ड का ही हिस्सा है। जब हमारा अभिमान गिर जाता है तब हमारी दृष्टि इस शरीर तक नहीं रह जाती है पूरा ब्रह्माण्ड अपना शरीर लगने लगता है। परन्तु हम शरण में किसी की भी जाए अवश्य कोई न कोई कामना होगी। कई आचार्य स्वर्ग का प्रलोभन देते हैं। कई साधना करने के लिए शरीर की बीमारियों को ठीक करने का लालच

देते हैं। परन्तु लोभ–लालच बिना किसी कामना के नहीं होता है। कामना चाहे धर्म की हो या अधर्म की उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। कामना का अर्थ कामना ही होता है। यहाँ अच्छी–बुरी कामना से कोई मतलब नहीं है।

इसलिए इसी लोक में एक शब्द और भगवान कृष्ण ने जोड़ दिया है कि यह सभ ज्ञान रूपी तप से पवित्र हुए पुरूष मेरे शरीर को प्राप्त हुए हैं। यह ज्ञान रूपी तप का क्या अर्थ हो सकता है। तप तो अज्ञानी भी कर सकता है। अहंकारी तप कर सकता है। चाहे जान चली जाए साठ दिन भूखा रहूंगा ही यह भी तप ही है। दो महीने तक खड़ा रहूंगा, यह भी तप ही है परन्तु में सारे तप अहंकार से निकलते हैं इसलिए भगवान श्रीकृष्ण को यह शर्त लगानी पड़ी कि ज्ञान रूपी तप से अज्ञान रूपी तप से नहीं।

तप अहंकारी ही कर सकता है। वह तपस्या में उत्सुक होता है इसलिए प्रायः तपस्वी अहंकारी ही होते हैं क्योंकि अहंकारी हठ कर लेता है कि जान भी चली जाए अब यह तपस्या नहीं तोडूंगा। वह उसे पूरा करके ही रहेगा।

इसलिए ज्ञान रूपी तप से पवित्र हुए। तप अज्ञान से भी निकलता है और ज्ञान से भी निकलता है। अज्ञान से निकला तप स्वयं को अपवित्र कर जाता है इसलिए ज्ञान रूपी तप से पवित्र हुए पुरूष मेरे शरीर को प्राप्त हो चुके हैं।

आदमी का पूरा जीवन अज्ञान पर ही खड़ा है। अहंकार पर खड़ा है। सिर्फ साधु सन्त ही क्या? प्रत्येक आदमी धन पद प्रतिष्ठा पाने में लगा है। क्या में तपस्या नहीं है? धन इकट्ठा करना भी कोई कम तपस्या नहीं हैं पद प्राप्त करना भी कम तपस्या नहीं है। सारा जीवन इस तपस्या में आदमी फूंक देता है परन्तु यह सारी तपस्या अहंकार के केन्द्र से निकलती है। इसलिए इसे अज्ञान रूपी तपस्या ही कहा जाएगा।

श्रीकृष्ण कहते हैं ज्ञान रूपी तप यानि समर्पण। अनन्य भाव से मेरी शरण में हुए ज्ञान रूपी तप से पवित्र हुए पुरूष मेरे शरीर को प्रापत हो चुके हैं। ज्ञान रूपी तप समर्पण पर निर्भर करता है अहंकार पर नहीं। इसका आशय यही है कि जो कुछ करवा रहा है यानि जो कुछ मेरे माध्यम से हो रहा है वह सब परमात्मा ही करवा रहा है व वही कर रहा हैं दुख तो दुख, सुख तो सुख, मान तो मान, अपमान तो अपमान, सब उसके शरण की

बात है कोई शिकायत नहीं है जिसमें परमात्मा राजी है जैसा वह चाहे हर परिस्थिति स्वीकार्य ही ज्ञानरूपी तप है। यह बिना अहंकार के ही निकल सकता है।

जीसस को जब सूली पर लटकाने के लिए ले जा रहे थे तब जीस के मुंह से निकला कि हे परमात्मा यह क्या दिखला रहा है? परन्तु दूसरे ही क्षण ख्याल आया कि यह तो परमात्मा के प्रति शिकायत हुई। तुरन्त ही दुबारा कहा माफ कर भूल हुई जैसी परमात्मा की इच्छा। हे प्रभो, आपकी इच्छा पूरी हो। कोई शिकायत नहीं।

जब तक अपनी मर्जी से तपस्या होगी वह अज्ञान रूपी तप से ही होगी और जब उसकी मर्जी से तपया होगी वह ज्ञान रूपी तप से ही होगी। मूल रूप से अशुद्धि है।

संत गुरूजीएफ के पास एक महिला साधक आई। वह सिगरेट पिया करती थी। गुरूजीएफ ने कहा– सिगरेट नहीं छोड़ सकती है, तब फिर क्या छोड़ सकती हो? इतनी कमजोर हो कि एक छोटी सी आदत को नहीं छोड़ सकती? महिला होकर सिगरेट पीती हो। उस महिला ने सिगरेट पीना छोड़ दी। करीब चार माह बाद फिर वही महिला गुरूजिएफ के पास गई और कहा गुरूजी मैंने सिगरेट छोड़ दी है। तब गुरूजिएफ ने स्वयं सिगरेट उस महिला को दी–लो यह सिगरेट पीओ। महिला आश्चर्य से देख रही थी। गुरूजिएफ ने कहा क्या देख रही हो? लो इसे जलाओ और पीओ। उसने सिगरेट पी, तब गुरूजिएफ ने कहा–तुमने सिगरेट छोड़ दी यह तुम ने अहंकार निर्मित किया है वरना मुझे आकर यह बताने की आवश्यकता नही थी कि मैंने सिगरेट छोड़ दी– यदि छोड़ दी तो छोड़ दी, बात खत्म हुई। परन्तु अभी भी तुम्हारे में वही सिगरेट घम रही है। इसलिए मैंने तुम्हें यह सिगरेट पीने को कहा ताकि सिगरेट छोड़ने का अहंकार तुममे नहीं रहे।

वेदव्यास जी ने सारा ग्रन्थ लिखा। सारे श्लोक वेदव्यास जी के ही हैं। कृष्ण के पात्र मुख से गीता के श्लोक कहे गये हैं और अर्जुन के द्वारा पूछे गये प्रश्न भी वेदव्यास जी के ही हैं। दोनों के संवादों में दर्शाया है कि कषायों व विकारों से कैसे जीते? परन्तु हमारे कषाय हमें प्रिय है इसलिए उन्हें मारना नहीं चाहते इसलिए कृष्ण द्वारा गीता में कषायों पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जाती है? इसलिए यह सारा युद्ध धार्मिक युद्ध था शारीरिक नहीं थ। शारीरिक होता तो कृष्ण द्वारा धार्मिक बातें बताने की क्या आवश्यकता

थी? उन्हासेंने सारी रचना में जो भी पात्र दिए हैं उन सबकी उत्पत्ति भी बड़ी बारीकी से दर्शाई गई है।

वेदव्यास जी की माता सत्यवती थी। उनको मत्स्यगंधा भी कहते थे। सत्यवती का जन्म एक मछली के पेट से हुआ था। एक समय में एक राजा हुए। उन्होंने तपस्या की और इन्द्र प्रसन्न हुए व सजा को एक विमान दिया। वह राजा विमान में पृथ्वी से ऊपर ही रहा करते थे इसलिए उनका नाम उपरिचर हुआ था। यह कहानी हमारे मस्तिष्क के बारे में कहती है कि विचार हमारे ऊपर ही विचरते रहते हैं। एक समय वासना के कारण उपरिचर पतित हुए और उनके बीजकणों को यमुना नदी में एक मछली ने धारण किया। दस माह बाद मछली के पेट से मल्लाहों ने एक पुत्री को निकाला। इस कन्या का नाम सत्यवती रखा गया।

यहाँ उपरिचर का काम से पातित का आशय निष्काम की अवस्था से है। निष्काम की अवस्था यानि कोई कामना नहीं। जब कोई कामना नहीं तब उससे जो पेदा होगा वह सत्यवती नाम की बुद्धि होगी। यह यमुना नदी की मछली से पैदा हुई। श्रीकृष्ण को भी यमुना पार बताया गया था क्योंकि नदियाँ सभी समुद्र में जाकर मिलती है। समुद्र आत्मा का प्रतीक है। सत्यवती यानि मत्सयगंधा। निष्काम से भी जो पैदा होता है वह भी एक प्रकार का नया काम या नई विचारधारा ही होगी लेकिन उसमें त्रुटि नहीं होगी। हम मछली को मीन भी कहते हैं।

धर्म के प्रति जो सुना गया वह एक गन्ध की भांति एक से दूसरे में पहुँच जाता है। इसलिए धर्म आदमियों के लिए है न कि पशुओं के लिए है। इसलिए साधक को भाषा व धर्म के बारे में पहले से ज्ञान होगा ही। उससे पतित होना ही नए आयाम को पैदा करने की बात है। यह कहानी बताती है कि ज्ञान किस प्रकार पैदा होता है ? सत्यवती नाम की निष्काम बुद्धि जिसमें कोई मीन मेख नहीं अपने पिता मल्लाह की नाव चलाया करती थी। अब परासर ऋषि ने सतयवती को समागम हेतु प्रस्ताव रखा परन्तु उसने कहा अन्य लोग देख रहे हैं। तब परासर ऋषि ने कोहरी का निर्माण किया। परासर यानि दूसरे का असर। अब उस सत्यवती को तत्काल एक पुत्र पैदा हुआ जो पैदा होते ही बड़ा हो गया और माता को कहा कि जब भी जरूरत समझो में हाजिर हो जाऊँगा।

ज्ञान हमेशा दो क्षणों के बीच पैदा होता है। ज्ञान कभी भी किसी क्षण या समय में पैदा नहीं होता है। ज्ञान जब भी पैदा होता है व पूरा पैदा होता है। स्यं में ज्ञान पैदा होना इसी प्रकार की घटना है। क्योंकि समय के भीतर जो पैदा होगा वह ज्ञान नहीं होगा। ज्ञान हमेश समय के बाहर पैदा होता है। जब व्यक्ति अध्यात्मक शुन्य में होता है, अहंकार विलीन होता है तब सब खो जाता है सिर्फ प्रकाश ही शेष रहता है। परन्तु इसके पहले अन्धेरा यानि कोहरा रहता है। अहंकासर विलीन होने पर परमात्मा स्वयं भीतर बोलने लगते हैं। जैसे ही मैं मिटता है वैसे ही परमात्मा शेष रह जाता है। सत्यवती के व्यास जी पैदा हुए। सत्य के तो हमेशा सत्य ही पैदा होता है और एक झूठ के अनेक झूठ पैदा होते हैं।

वेदव्यास जी ज्ञान के प्रतीक थे। माता को कहा कि आवश्यकता हो तब याद करना हाजिर हो जाऊँगा। ज्ञान की यही पराकष्ठा है। साधक ने इसी ज्ञान के द्वारा महाभारत लिखी। जिसमें उन्होनें उस ज्ञान को वेदव्यास की संज्ञा दी है। जो वेदों में है बड़ी वेदव्यास जी में है। यह सब ज्ञान के दायरे में आते हैं।

महाभारत में बहुत से प्रसंग ऐसे है। जो बहुत बारीक हैं उसे समझना असंभव तो नहीं कहता परन्तु मुश्किल अवश्य है। मुश्किल इसलिए है कि आज चित्रों की भाषा खो गई है। हमारी भाषा की तरह ही चित्रों की भी भाषा प्रतीकों के रूप में थी परन्तु इस समय ऐसे कहीं बाहर अवशेष नहीं मिलते । फिर भी इन्हीं में से ही व अन्य धार्मिक प्रतिकात्मक कहानियों से ही समझा जा सकेगा।

स्वयं को कैसे खोजें आप खोज उसी की कर सकते हैं जो आप से दूर है। देखने के लिए भी दूरी आवश्यक है। बिना दूरी के नहीं देख जा सकता है। स्वयं कासे खोज व देखा नहीं जा सकता। यह एक ऐसा ही तथ्य है कि स्वयं हाथ, हाथ का कैसे पकड़े। स्वयं चिमटा स्वयं को कैसे पकड़ सकता है। चिमटा दूसरी चीजों को यानि स्वयं को छोड़ सब पकड़ सकता है।

आप बाहर खोज सकते हैं भीतर खोजा नहीं जा सकता। यदि बाहर की चीजों की तरह स्वयं को खोजोगे तब फिर स्वयं से दूर हो जाओगे। यदि आपको सांसारिक वस्तुएँ खोजनी हो तब बाहर खोजना होगा। यदि स्वयं को खोजना हो तब पूर्णतः शान्त व विचार शून्य व पूर्णतः खाली होना पड़ेगा।

क्योंकि जिसे आप खोजना कह रहे हैं वह भी एक प्रकार का तनाव है। वह भी इच्छा है। इच्छा किसी भी प्रकार की हो वह कामना ही होगी और कामना के द्वारा स्वयं को खोजा नहीं जा सकता। वह खोज फिर बाहरी हो गई। इसलिए स्वयं को खोजने के लिए इसके विपरित करना होगा। क्योंकि स्वयं को खोजने के लिए इसके विपरीत करना होगा। क्योंकि स्वयं को यानि आत्मा को हमने देखा नहीं है सिर्फ हमारी खोज का उद्देश्य सिर्फ हमारी इच्छाओं की पूर्ति करना होता है और वह पूर्ति हमारी इच्छा से नहीं, बिना इच्छा से हो सकती है। सभी इच्छाएँ सांसारिक, आत्मा बिना इच्छा के है। हमारा संसार इच्छाओं से बना हुआ है इच्छा चाहे धार्मिक हो या सांसारिक, वस्तुओं की हो या मुक्ति की हो सब अज्ञान के दायरे में आता है।

जब तक इच्छाएँ कामनाएँ हैं तब तक स्वयं को नहीं समझा जा सकता। हमें इच्छाओं और कामनाओं की प्रक्रिया को समझना होगा और इस प्रक्रिया को समझने पर ही आप स्वयं या आत्मा को जान सकते हैं। स्यं को जानने के लिए ध्यान अनिवार्य है। ध्यान का आशय कोई विचार नहीं। क्योंकि विचारों से स्वयं को नहीं जाना जा सकता। विचारों के लिए दो की आवश्यकता होती है, ध्यान बिना विचार के ही होगा। इसलिए सिर्फ अकेला ही स्वयं को समझ सकता है।

विचारों से हम दूसरे को जान सकते हैं ध्यान से स्वयं को जाना जा सकता है। ये दोनों के जानने की विपरीत प्रक्रिया है। ध्यान में किसी प्रकार की क्रिया नहीं होती है, विचार भी शून्य हो जाता है तब ध्यान की अवस्था पहुँचती है। ध्यान से ही समाधित लगती है।

।। दिव्य रश्मि ।।

हम जब भी कोई क्रिया करते हैं तब दूसरों से जुड़ते हैं– जब कोई क्रिया व प्रतिक्रिया न हो तब स्वयं से जुड़ते हैं। हम मानसिक रूप से भी पूरी तरह शान्त होने पर ही स्वयं से जुड़ सकते हैं। यदि हम ध्यान में बैठे हैं और हमारा शरीर बिलकुल नहीं हिलता डुलता मगर हमारी मानसिकता क्रिया–प्रतिक्रिया करती हो तब ध्यान संभव नहीं। हम बहुत गहरे में हम अपनी वासनाआसें और कामनाओं से जकड़े हुए हैं इसलिए ध्यान संभव नहीं। हम कामनाओं और कल्पनाओं से पूरी तरह घिरे हुए हैं कि हमारी विचार

प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है। हम स्वन देखते रहते हैं। क्योंकि सपने हमेशा नींद में देखे जाते हैं इसलिए संत लोग कह गए हैं कि आदमी को जागना है। अतः हम ध्यान के अभाव में हम नींद में ही हैं।

अभी जो समय है वह कलयुग है। हम कल से जुड़े हुए हैं। आज का आदमी वर्तमान में नहीं रहता है और धार्मिक पुरूष हमेशा वर्तमान में रहे हैं। वे कल्पनाओं में नहीं जीते हैं। कलसे कल्पना बनी है। कल चाहे भूत व भविष्य कोई अन्तर नहीं है। ध्यान हमेशा वर्तमान में रहना सिखाता है। ध्यानी व्यक्ति नींद में नहीं होते हैं। वे शारीरिक नींद हो तब भी जागते हुए सोते हैं क्योंकि वे वर्तमान से जुड़े होते हैं। कल से जुड़े नहीं रहते हैं। परन्तु आज का मानव कल्पनाओं में भूत भविष्य में जीता है। अतः वर्तमान में नहीं है इसलिए ही आज सारे उपद्रव इस संसार ने धर्म के अभाव में हैं। अतः यही कलयुग है।

ध्यान के द्वारा ही स्वयं को, उस सत्य परमात्मा को समझा जा सकता है। परन्तु समझना कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि समझना भी हमारे मन की क्रिया है। ध्यान में दो नहीं होते हैं। ज्ञान व ज्ञानी दो नही रह जाते हैं। हमारे मस्तिष्क में कोई काम नहीं है तब ध्यान है। काम में कुछ न कुछ हमारे विचारों के अनुसार करना होता है परन्तु जहाँ ध्यान है वहां पर कुछ नहीं। विचारों के द्वारा हम कुछ बनाते हैं लेकिन ध्यान से सिर्फ प्रकृति ही नजर आती है जो उनकी प्रक्रिया है। हम कुछ पैदा नहीं कर सकते, वह तो पहले से ही मौजूद हैं जिस प्रकार समुद्र पर लहरे हैं, लहरों से समुंद्र ढक जाता है। समुद्र के ऊपर लहरें हैं। यदि शान्त समुंद्र को देखना है तब समुंद्र में डुबकी लगाने पर शान्त समुंद्र मिलेगा। हम सिर्फ लहरों को देखकर शान्त समुंद्र को भूल गए।

इसलिए हमारे पौराणों में कहते हैं कि विष्णु भगवान समुंद्र में विराजते हैं। यहाँ समुंद्र का आशय हमारी आत्मा से है। बाबा रामदेव की कथा में अजमल जी समुंद्र में कूद गए थे तब रामदेव जी ने उनके घर अवतार लिया था। यह सिर्फ हमारे ध्यान का परिणाम होगा। हम भी विचार रूपी लहरों से घेरे हुए हैं। यदि स्वयं को देखना हो तब इन सब विचारों को छोड़ समुंद्र के गहरे में छलांग लगानी होगी।

ध्यान में जो दृश्य दिखाई देते हैं वे विचारों के अनुसार प्रकट होते हैं। ध्यान में दृश्य पैदा नही किए जाते परन्तु चित्र पर बने आवेग उभरते हैं। दृश्य चाहे खुली आँख से

दिखें व बन्द आँख से कोई अन्तर नहीं है। विचारों व दृश्यों से नीचे उतर कर अलग होना ही ध्यान है। जो दृश्य बाहर दिखाई देता है। उसमें ही लीन हो जाए, दृश्य ही बन जाए कि मैं कुछ नही जानता। कुछ नहीं जानता का आशय यह नहीं है अज्ञानी हो गया। कुछ नहीं जानता का आशय "कुछ नहीं" को जानता हूँ, शून्य को जानता हूँ। परन्तु आपको यह मालूम होना चाहिए कि यह सारा ब्रह्माण्ड शुन्य पर ही आधारित है। सारी शक्ति भी उसी की है।

इसे समझने के लिए आप दिवार घड़ी को देखें। घड़ी में तीन सुईयां होती हैं। एक सूई सैकण्ड की जो हमें चलती दिखाई देती है परन्तु मिनट की सूई चलती दिखाई नहीं देती। वह एक घटा में पूरा चक्कर लगा लेती है परन्तु चलती दिखाई नहीं देती। घंटे वाली सूई छोटी होती है वह बारह घंटे में पूरा चक्कर काटती है परन्तु चलती दिखाई नहीं देती है। अब यदि हमें इन्हें चलाना देखना हो तब देखा जा सकता।

यदि घड़ी को आप जमीन पर रखकर और मिनट वाली सूई को पाँच फुट लम्बी बना दें यानि पतले कागज की छड़ी बनाकर सूई के सिरे में डाल दें। कागज की छड़ी में ज्यादा वजन नहीं होना चाहिए वरना घड़ी बन्द हो जाएगी। वह छड़ीं डालते ही आपको छड़ी की परिधि का सिरा चलता दिखाई देने लगेगा। क्योंकि घड़ी का व्यास सिर्फ करीब एक फुट का है परन्तु अब सूई का व्यास दस फुट बन गया। यानि सूई का एक सिरा केन्द्र से पांच फुट दूर हो गया। जब घेरा बड़ा हो गया यानि सूई के सिरे को दस फुट घेरे में एक घन्टा में चक्कर लगाना है इसलिए सूई का वह परिधि का सिरा चलता दिखाई देगा। और यदि इसे सौ फुट या हजार दस हजार फुट लम्बा करें तब शायद आप उस सूई के सिरे के बराबर भाग भी नहीं सकेंगे। क्योंकि उसे तो एक घन्टे में चक्कर पूरा करना है। अब यदि इसे प्रकाश की किरण की भांति घड़ी की सूई दस हजार मील लम्बा कर दें तब शायद आपके जेट या विमान भी उस बराबर नही भाग सकेगा। परन्तु घड़ी में वही सूई चलती नहीं दिखाई देगी। इसका मतलब हुआ कि ज्यों–ज्यों घेरा बढ़ता है त्यों–त्यों गति बढ़ती जाती है। सूई का एक सिरा घड़ी के केन्द्र से जुड़ा है दूसरे सिरे की जितनी लम्बाई ज्यादा होगी वह घूमता हुआ दिखाई देगा। इसी प्रकार चाहे हम हैं या घड़ी की सूई जितने केन्द्र से दूर होंगे उतने ही तेज गति से घूमते नजर आएंगे। क्योंकि केन्द्र पर कोई गति नहीं है, जाहं गति नहीं है उसी पर ही सारी गति निर्भर करती है। बिना

केन्द्र के गति नहीं हो सकती। हम अपने केन्द्र से जितने दूर होंगे उतने ही अशान्त होंगे। ज्यों–ज्यों केन्द्र की ओर जाएंगे गति कम होती हाएगी। केन्द्र पर पहुंचने पर कोई गति नहीं है। केन्द्र में कुछ नहीं है जहाँ सब कुछ है यानि उस "कुछ नहीं" पर सब कुछ चलता है। अब यदि कोई कहे कि मैं कुछ नहीं जानता। इसका मतलब अज्ञानी नहीं हुआ है। यहाँ मेरा आशय ध्यान के संबंध में है कि जो कुछ नहीं जानता वह सब कुछ जानता है। मात्र इतना कहने से कि मैं कुछ नहीं जानता इससे कुछ नहीं होने वाला है। वासतव में आप "कुछ नहीं" को जानते हैं तब आप सब जान गए जो इस संसार में जानने योग्य हैं। शुन्य से परिचित होने पर सब बदल जाऐगा। आप प्रभू के राज्य में होंगे। आप सिर्फ साक्षी बन जाएंगे। आप को चारों ओर दृश्य ही दिखाई देगा। आप हद व अचल हो जाएंगे। सभी प्रकार के क्रियाकाण्डों को देखते रह जाऐंगे। संसार गतिशील दिखई देगा। दृश्य बदले हुए दृश्य दिखाई देंगे। लेकिन साधक एक साक्षी की भांति अटल होगा। उसके साथ कुछ भी हो वह साक्षी की तरह देखेगा। उस पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ सकता। कोई कल्पना नहीं होगी।

विचार सभी बाहर की दुनिया के होते हैं। हर समय हम विचार कैसा भी करें वह बाहर की चीजों के बारें में ही होता है। खुली आंख से करें विचार तब भी विचार बाहर के ही होते हैं और बन्द आंख से विचार करें तब भी विचार बाहर के ही होंगे। बाहर के विचारों व कल्पनाओं से हमारा मन भरा हुआ है जो बार–बार उठता रहता है। जो बाहर भी नहीं है लेकिन हमारी कल्पनाओं में सब चलता रहता है। यह विचारों की दुनियां हैं जो हमारे मन मस्तिष्क में भरी पड़ी है जो नींद में व जागते दिखाई देती रहती है।

स्वयं को जानने के लिए हमारे विचारों के घेरे से अलग होना होगा। यदि हम गहराई से विचार करें तब इन विचारों व हमारे विचारों के उद्देश्यों ने ही हमारे स्वयं को घेर रखा है इसलिए स्वयं से हम परिचित नहीं हो सकते। सुबह से शाम व रात तक व नींद में भी विचार चलते रहते हैं जिसमें हमारी शक्ति दिन प्रतिदिन क्षीण होती रहती है।

अतः विचारों से अलग होना व विचार शून्य होना बहुत बड़ी बात है लेकिन विचारों को कैसे रोकें? साधारणतः लोग विचारों को दबाने की कोशिश करते हैं। जो साधक साधना करते है। वे बलपूर्वक विचारों को धकेलना व रोकने का प्रयास करते है। परन्तु

जितना ज्यादा प्रयास करते हैं वे बलपूर्वक विचारों को धकेलना व रोकने का प्रयास करते हैं परन्तु जितना ज्यादा प्रयास करते हैं। उतने ज्यादा विचार उभारते हैं। हमें सर्वप्रथम समझना चाहिए कि विचार पैदा कैसे होते हैं ? विचारों को बलपूर्वक दबाना हमें सहयोग नहीं देगा। यह ऐसा ही है कि पेड़ की शाखा काटने पर दूसरी शाखाएं जल्दी व ज्यादा आती है। इसलिए विचारों को दबाना व रोकना नहीं है। क्योंकि विचार हर क्षण नए–नए पैदा होते रहते हैं। विचारों की ज्यादा आयु नहीं होती है। एक चिार मरता है, दूसरा विचार तत्काल पैदा होता है। एक ही विचार ज्यादा समय तक जिन्दा नहीं रह सकता। एक विचार मरने को होता है तब दूसरा तुरन्त उसकी जगह ले लेता है।इसलिए विचार कैसे पैदा होते हैं। इस प्रक्रिया को समझने पर आसानी से विचारों से मुक्ति पा सकते हैं वरना सारी जिन्दगी भर इनसे लड़ते रहने से कुछ हासिल नहीं होगा।

विचार कैसे पैदा होते हैं? इन्हें रोकना है। विचार अदृश्य क्षणों में पैदा होते है। यह समझना है। एक विचार मरा व दूसरा उसी क्षण पैदा हो जाता है इसलिए हम इनसे हार जाते हैं कि वे नष्ट नहीं होते। परन्तु हम उन पर ध्यान दें कि पैदा कैसे होते हैं? विचारों के पैदा होने के प्रोसेस पर ध्यान देना है। तब मालूम होगा कि एक पैदा हुआ और चला गया, फिर दूसरा आ गया। यदि विचारों को नष्ट करना है तब जो नया विचार आने वाला है उसे रोकना है। विचार नये क्यों पैदा होते हैं? इसे ध्यानपूर्वक देखना होगा। यह सब हमारे बाहरी जगत की घटनाओं के परिणाम हैं। उस परिणामें के आधार पर हमारे विचार प्रतिक्षण पैदा होते रहते है।।

यदि आप किसी सुन्दर महिला को देखते हैं। देखना विचार नहीं है परन्तु आप देखकर विचार करते हैं कि महिला बहुत सुन्दर है विचार पैदा हो गया। साधारणतः यदि आप देख रहे हैं और कोई विचार नहीं पैदा होने देते हैं या विचार करने लगते हैं यह साधक पर निर्भर करेगा। यदि विचार पैदा नहीं करते हैं तब सिर्फ देखना है। दृश्य चाहे कैसा भी हो? सुन्दर हो या कुरूप। आपको व्याख्या नहीं करनी है। यदि व्याख्या में गए कि विचार पैदा हो गए। देखते रहिए कोई धारणा नहीं बनाइये। हर्ष व आनन्द का अनुभव कर सकते हैं लेकिन धारणा बनाकर शब्दों में ढालना शुरू कर दिया तब विचार पैदा हो गया अन्यथा आपने सुन्दरता का अनुभव किया। हर्ष महसूस किया। यदि विषय कुरूप हो तब भी उसका अनुभव कर सकते हैं लेकिन कुरूपता को शब्दों में ढालने पर फिर विचार पैदा

होते हैं तब आपका अनुभव समाप्त हासे गया। और आप कल्पना में उतर गए। इसी प्रकार प्रत्येक दृश्य से आदमी की धारणा बनती है और फिर विचार पैदा होते हैं। सारा जीवन इन्हीं विचारों के घेरे में बीत जाता है कि हम कुछ नहीं जान पाते और हम बीत जाते हैं। क्योंकि इस प्रकार से आदत बन जाती है कोई दो शब्द बोले हम पहले ही बोल जाते हैं, पूरी बात सुनने की क्षमता नहीं होती है। लोग साधारणतया तुरन्त देखकर व चार लाइन सुनकर निर्णय दे देते हैं। यह सिर्फ विचारों का भाव या अज्ञानता है। अतः देखना व सुनना विचार नहीं है। सुनने कोदेखने की तरह सुने तब और ज्यादा कठिन होता है। परन्तु असंभव नही है, सुना जा सकता है।

अतः विचारों की पैदाईश रोकना है तब ध्वनि व देखने से ही रूक सकती है। आप एक वृक्ष को देख रहे हैं। सिर्फ देख रहे हैं कोई विचार नही पैदा कर रहे हैं, कोई वयाख्या नही कर रहे हैं, तब कया घटित होगा? आप कल्पना नहीं कर पाएंगे कि पहले कभकी आपने ऐसा नहीं देखा है। विचार बन्द हुए तुरन्त आश्चर्य प्रकट होगा। इसी प्रक्रिया से भीतर नई ऊर्जा का संचार होगा जो पूरे शरीर में फैल जाएगी। ऊर्जा का भरमार होने पर आप एक अलग तरह से साक्षी की भांति अनुभव करेंगे। हमारे चिारों की दुनियां दूर होती जाएगी और भीतर हमारे शांति का प्रकाश फैल जाएगा।

विचार हमारे बाहरी जगत के लिए उपयोगी है। परन्तु हमारे भीतर के जगत के लिए बाधा है। बाहरी जगत के लिए आवश्यक है। विचारों ने ही आज बाहरी जगत में काफी तरक्की की है। लेकिन स्वयं को जानने में सहायक नहीं हो सकती।

साधना में साधक को शान्त बैठकर शरीर को तनाव से रहित कर, जैसा भी आसन सुविधाजनक हो बैठें, रीढ़ को सीधा रखें। शरीर को हिलने डुलने न दें। विचारों में तनाव व उत्तेजना न रखें कि शायद आप बहुत बड़ा काम करने जा रहे हैं। ऐसा न समझें। सांस को धीरे–धीरे लेते हुए नाभि तक पहुंचें, गहराई से लें। ध्यानपूर्वक जो बाहर से सुनाई देता है उसे सुनें। आंखे बन्द रखें। भीतर जैसा भी दृश्य दिखाई दे सिर्फ देखें। ध्यान से सुनें। विचारों को रोकने का प्रयास न करें। शानत भाव व साधारण ढंग से सुने व देखें परन्तु कोई विचार नहीं बनने दें। जो होता है उसे होने दें सिर्फ साधक को निरीक्षण करना है। साक्षी की भांति सिर्फ देखना व सुनना है। अपना कोई निर्णय नही लेना है। तब धीरे–धीरे

साधक को एक नई व विशाल शांति का अनुभव होगा। बाहर आवाजें होंगी लेकिन भीतर सब शान्त होगा। अतः स्वयं को अनुभव होगा कि कोई विचार नहीं रह गया है। एक स्वस्थ चित्त की अवस्था रह जाएगी। तब साधाना शुरू होगी।

परन्तु आज आदमी शरीर को कम महत्व देता है, विचारों को ज्यादा महत्व देता है। यदि साधना पथ पर जासना है तब सब कुछ शरीर के हवाले छोड़ना होगा। शरीर आपको कभी धोखा नहीं देता। प्रत्येक का शरीर अपने आप बनाए हुए हैं और बनाता है। सांस अपने आप चलती है, खाना अपने आप हजम होता है, खून हर समय शरीर में दौड़ता है, धड़कन अपने आप चलती है। तमाम क्रियाओं में आपके विचारों का कोई सहयोग नहीं है। यदि शरीर की सारी क्रियाएं आपको व आपके विचारों को सौंप दें तो आप संभाल नहीं पाएंगे। अतः आप विचारों को छोड़ स्वयं शरीर की शरण में आएं। आपको बहुत अच्छे व नए अनुभव होंगे। आपकी उस शुन्य व सत्य से परिचय कराने में आपका शरीर पूरा सहयोग देगा।

निर्विचार होने पर शरीर स्वयं का पथ प्रदर्शन करता है और ऊर्जा का शरीर में तेज गति से उत्पन्न होना शुरू हो जाता है। लम्बे समय तक निर्विचार की अवस्थ होने पर स्वयं की शक्ति से परिचय होगा। शरीर से बाहर आ सकते हैं और शरीर से सम्पर्क भी बना रह सकता है। बाहर दूर के ग्रहों तक भी भ्रमण किया जा सकता है। एक क्षण में अरबों करोड़ों मील पार सकते हैं और वापिस एक ही क्षण में शरीर में आ सकते हैं। शरीर में बाहर आने के लिए शरीर में ऊर्जा की मात्रा होनी चाहिए वरना शरीर से बाहर नहीं आया जा सकता है। शरीर में ऊर्जा का आधिक्य निर्विचार होने पर ही हो सकता है।

विचार करने पर हमारी ऊर्जा नष्ट होती है। हम जब सुबह उठते ही विचारना शुरू कर देते हैं और रात जब सोते है। तब तक विचारना जारी रहता है। जब रात को हम कुछ घंटा सो लेते हैं, तब ऊर्जा फिर बच जाती है और सुबह उठते हैं तब फिर तरोताजा महसूस करते हैं और फिर सारा दिन विचार चलते रहते हैं। इस प्रकार सारा जीवन चला जाता है। कुछ समय जब नींद में होते है। तब विचार बिलकुल बन्द हो जाते हैं और शरीर अपनी ऊर्जा की पूर्ति कर लेता है, तब नींद में विचार चलने लगते हैं, स्वप्न देखना शुरू कर देते हैं। फिर ऊर्जा नष्ट होनी शुरू हो जाती है।

। ।

ऊर्जा यदि बाहर की तरफ बहती है तब काम बन जाती है। काम का आशय डिजायर से है। कामनाओं से है। बाहर बहती ऊर्जा काम और भीतर की तरफ बहती ऊर्जा अकाम। जब आदमी की ऊर्जा बाहर बहती है तब बाहर की वस्तुएं तो पाई जा सकती है परन्तु आदमी स्वयं को खो देता है।

हम जब भी कोई कामना करते है। तो हमें बाहर की तरफ बहना पड़ता है। बाहर हमें क्या पाना है? और बाहर क्या मिल सकता है? बाहर से हमें धन पाना है, यश पाना है, पद पाना है, प्रेम पाना है, परन्तु परमात्मा बाहर से नहीं मिलता। बाकी सब बाहर मिल सकता है। परन्तु कई कहते हैं कि मोक्ष ऊपर आकश पर है और उसे भी पाने की इच्छा होगी तब फिर वह कामना ही होगी। यह ठीक से समझने योग्य है कि जिन्हें परमात्मा व मोक्ष पाना है उन्हें भीतर की तरफ मुड़ना होगा। बाहर मोक्ष व परमात्मा पाना नहीं हो सकता। जो बाहर खोज रहे हैं, वे सिर्फ कामी हैं।

इसलिए कलयुग से हटकर वर्तमान में आए तो आपकी ऊर्जा इकट्ठा होगी और वह शरीर में आगे के केन्द्रों से गुजरेगी। हमारे शरीर के सात केन्द्र है जो प्रथम केन्द्र है वह मूलाधार जो हमारी रीढ़ की हड्डी के नीचे आखिरी गुदा के पास होता है जहां से हमारी सर्वाधिक ऊर्जा नष्ट होती है। यह यौन का केन्द्र है। इस केन्द्र से भारी मात्रा में संकलित ऊर्जा ही आगे के केन्द्रों को खोल सकती है। इसलिए ऊर्जा बचानी है तब तो वर्तमान में रहना होगा। प्रतिक्षण सचेत रहना होगा। एक ाण भी हमारा भविष्य व भूत में न डोले तब आप वर्तमान में हो सकते हैं।

जो आदमी कल की व भविष्य की सोचता है उसकी ऊर्जा बाहर बह जाती है क्योंकि हमारा संबंध भविष्य से नहीं है। भविष्य दूर है। हमारा संबंध सिर्फ कामना से है जो भविष्य नहीं है। भविष्य होगा परन्तु होगा का संबंध सिर्फ कामना से है।

अब यदि किसी को मोक्ष पाना है, परमात्मा को पाना है तब भविष्य की इच्छाएँ व कामनाओं को क्षीण करना होगा। और वर्तमान में रहने की कला को सीखना होगा। जिसके लिए ध्यान ही एक उपाय है।

परन्तु वर्तमान में रहना कामनाओं और इच्छाओं के होते कठिन है। परन्तु असंभव नही है। वर्तमान में रहना सीखने पर आगे के अनुभव अपने आप होने लगेगा।

इसलिए तो परमात्मा स्वयं द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। शब्दों के माध्यम से विचारों द्वारा सत्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। मैं जो भी लिख रहा हूँ ससे आपको सत्य नहीं मिल जाएगा। कोई भी आपको सत्य नही दे सकता। यदि कोई देगा तो असत्य ही देगा। असत्य हस्तान्तरण किया जा सकता है, सत्य नहीं। प्रेम हस्तान्तरण नही किया जा सकता। आपको प्रेम की अनुभूति हुई परन्तु ट्रांसफर नहीं कर सकते परन्तु एक दिन अन्धे की तो आंखों का ऑपरेशन होने पर वह दृश्य देख सकता है परन्तु सत्य, परमात्मा को देखना कभी ट्रांसफर नही किया जा सकता। क्योंकि आंखें शरीर का भाग है। शरीर परमात्मा व सत्य का भाग नहीं है।

हम शब्द व विचार ट्रांसफर कर सकते हैं परन्तु सत्य पीदे रह जाएगा। क्योंकि शब्द सत्य नहीं है। इसलिए सत्य लिया व दिया नहीं जा सकता। हाँ, शब्दों के मायम से इतना भर अवश्य किया जा सकता है कि जो भी आपने बाहर से ज्ञान सीखा है, उसके भार से दबे हुए हो तो इस भार से छुटकारा पाने में मदद की जा सकती है। शब्दों व ज्ञान के बोझ को हटाया जा सकता है। मैं या अन्य कोई धार्मिक पुरूष आपको शब्दों व विचारों के भार से शब्दों द्वारा मुक्त करा सकता है।

सत्य या परमात्मा एक है। विचार व शब्द अनेक है। शब्दों के कारण धर्म सम्प्रदाय अनेक हैं। परन्तु धर्म व सत्य तो एक ही है। धार्मिक सम्प्रदाय शब्दों व विचारों के कारण है। धर्म के कारण नहीं है।

मैं ज्ञान बांटने की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं जो ज्ञान अपने शब्दों व चिारों के माध्यम से लिया है उसे हटाने की बात करता हूँ। मैं किसी पर ज्ञान का बोझ नहीं डाल रहा हूँ सिर्फ बोझ आपका हटाने का प्रयास कर रहा हूँ। इसलिए भारतीय पौराणिक कथाएँ सिर्फ बाहरी ज्ञान को हटाने व काटने बात प्रतीकों द्वारा कहती है।

हमनें जो भी जाना है वह सब शब्दों द्वारा जाना है। शब्द हमारी स्मृति में भरे हुए हैं। क्या आत्म ज्ञान के लिए स्मृति पर्याप्त है? क्या स्मृति से आत्म ज्ञान हो सकता है?

स्मृति सिर्फ एक विडयो, ओडियो की भांति रिकार्ड है। सूचनाएं हैं, ज्ञान नहीं है और न ही इससे ज्ञान संभव है।

यही सूचनाएं, विचार, हमारे भीतर के ज्ञान को ढके हुए हैं। चारों तरफ परकोटे की भांति कैद किए हुए हैं। जब तक इन परकोटे की दीवारों को नहीं तोड़ेगें तब तक भीतर से ज्ञान नहीं होगा। परन्तु इन तमाम बाहरी ज्ञान से विच्छेद होने पर आप सीधा साक्षात्कार कर सकते हो। उस स्वयं एक का साक्षात्कार ही सबका साक्षात्कार है।

परन्तु आज धर्म के नाम पर जगह-जगह दुकानें खुली हुई है। सभी रेडिमेड धर्म बेच रहे हैं। हर आदमी रेडीमेड धर्म, सत्य, परमात्मा खरीदना चाहता है। परन्तु रेडीमेड सत्य कैसे मिल सकता है? परन्तु बेचने वाले अपने सही माल का दावा करते हैं, कई प्रकार के प्रलोभन दिए जाते हैं।

इसिलए यदि आपको सत्य, धर्म, परमात्मा, आत्मदर्शन आदि वास्तव में पाना है तब तो आज तक सभी लिए हुए ज्ञान को बाहर फेंकना होगा। परन्तु सभी ओर विचारों का ज्यादा ही आकर्षण है। विचार हमारी सोसाइटी, समाज व धार्मिक संस्थाओं से आए हैं परन्तु हमारे धार्मिक शास्त्रों की सही मंशा को समझे बिना गलत होता जा रहा है।

बिना विचार के स्वयं से जुड़ते हैं। विचार हमेशा जो जानते हैं उसी का किया जा सकता । जिन्हें नहीं जानते उनके बारे में विचार नहीं किया जा सकता। हम स्वयं को नहीं जानते हैं इसलिए स्वयं का विचार नहीं किया जा सकता है। विचार समुद्रों की लहरों की तरह हमारी चेतना पर होते हैं। हमारी बिना चेतना के विचार नहीं हो सकते परन्तु चेतना बिना विचारों के हासे सकती है। विचार हमेशा अशांति का कारण है। क्योंकि विचार हमेशा भूत व भविष्य का किया जा सकता है, वर्तमान क्षण का कोई विचार नहीं होता है इसलिए विचारशील व्यक्ति को विचार प्रिय होते हैं। ज्यादा ही विचारशील व्यक्ति जल्द ही पागलपन की स्थिति में पहुंच जाता है। बिना विचार के आदमी पागल नहीं हो सकता ।

विचार प्रतिकूल व अनुकूल हो सकते हैं। हर परिस्थिति में बदलते रहते हैं। प्रतिकूल स्थिति पैदा होने पर देखा है कि लोग आत्महत्या तक कर लेते हैं। इसलिए कि विचारों की

प्रतिकूलता होने पर स्थिति असहनीय हो जाती है। बड़े पढ़े लिखे लोग भी आए दिन आत्महत्या करते सुना गया है।

जितने भी झगड़े, उपद्रव, उग्रवाद सब विचारों की देन है। सभी झगड़े विचारों के हैं। शरीर आपस में लड़ते। विचारों के टकराव शरीरों को लड़वा देते हैं। शरीर तो हम सबके एक से हैं। सभी सांस लेते हैं। सभी का ह्रदय धड़कता है। सभी की कार्य प्रणाली एक सी है। तभी तो एक दवा प्रायः सभी रोगों में सबके काम आती है और सबको उपयोगी होती है।

हम सब एक ही वृक्ष के पत्ते हैं। एक वृक्ष के अरबों खरबों पत्ते हो सकते हैं। सभी पत्ते की अलंग–अलग डालियाँ है, शाखाएँ है। सबकी दिशाएँ अलग–अलग है। यदि एक पत्ता विचार करे कि सारा पेड़ सभी शाखाएँ मेरी वजह से है तो उसका विचारना गलत है। परन्तु विचारने की आदम पड़ गई है। इसलिए बिना विचारे रहा भी नहीं जा सकता।

हम सभी करने की भाषा समझते हैं, नहीं करने की भाषा नहीं समझते हैं। भाषा हमेशा करने की होती है, न करने की कोई भाषा नहीं होती है। प्रतियोगिता हमेशा दौड़ने की होती है, रूकने की प्रतियोगिता नहीं होता है। परन्तु परमात्मा दर्शन के लिए रूकना होगा। शान्त होना होगा। विचार भी नहीं करना होगा। तब तो परमात्मा प्राप्त करना बहुत सरल है कि कुछ करना नहीं पंड़ता है, विचार भी नहीं करना है।

हमारी भाषा का तर्क तो ठीकं कहता है कि कुछ नहीं करना तो आसान है। परन्तु यह नही करना जितना आप संभव समझ रहे हैं कि आसान है, उतना आसा़न नहीं है। सुना है कि भगवान महावीर स्वामी ने कहा है कि यदि सिर्फ छयालीस सैकण्ड तक आप कुछ नहीं करे कोई विचार न हो तो समाधि लग सकती है। हम दो–चार सैकण्ड भी बिना विचार किए नहीं रह सकते हैं।

यही साधना है। निरन्तर अभ्यास से निर्विचार हुआ जा सकता है। इसे ही तपस्या कहते हैं। विचार हमेशा विषयों की ओर ले जाता है। निर्विचार अपने आत्म स्वरूप की ओर ले जाता है। आत्म स्वरूप में कोई दुख नहीं। सभी शरीर की इन्द्रियों की अनुभूति शरीर तक ही रह जाती है जो कष्ट व दुख का कारण है। दुख व सुख दोनों नहीं रहते। दुख व

सुख एक दूसरे के विपरीत है। एक दूसरे की अनुपस्थिति है परन्तु आत्म स्वरूप में सिर्फ आनन्द है। इसलिए आनन्द शब्द का कोई विपरीत शब्द नहीं है। सब शब्दों का विपरीत शब्द है। सब शब्दों का विपरित शब्द मिलेगा परन्तु आनन्द शब्द का विपरीत नहीं मिलेगा।

।। पृथ्वी पर भुकम्प ।।

भारत के ऋषि मुनियों ने पृथ्वी को माता का दर्जा दिया है। पृथ्वी को माँ कहा है और कहना भी उचित है। क्योंकि हमें सब कुछ धरती माँ से ही मिलता है। हमारा पोषण धरती माँ ही करती है। लेकिन आज वैज्ञानिक युग में धरती का दोहन अति मात्रा में होने लगता है। इसलिए कि वैज्ञानिकों के पास धार्मिक सोच नहीं है। आज धरती आखिरी कगार पर है।

शायद आप और हम सोचते होंगे कि इस धरती यानि पृथ्वी में समझ नहीं है–ऐसा सोचना गलत हैं यह नियमित अपने केन्द्र पर हर समय तत्पर रहती है। सभी प्रकार के गुण व अवगुण इस पृथ्वी में समाहित है और इसमें गहरी समझ है।

हमें दुनिया का मानचित्र देखने से पता चलता है कि पृथ्वी पर अधिकांश भाग पर पानी भरा हुआ। जब यह गहरे संकट में होती है तब उल्टा–पुल्टा कर डालती है। जहां पानी है वहां धरती निकल आ सकती है और जहाँ धरती है वहां पानी हो जाता है। वैज्ञानिकों की दृष्टि से देखें तब पता चलता है कि जहाँ पश्चिम राजस्थान है वहाँ कभी समुद्र रहा था। यदि समुद्र रहा था तो धरती कैसे कब निकल आई, नहीं कहा जा सकता, परन्तु एक दिन यहां अवश्य समुद्र था। पिछले अध्याय में आपने श्रीकृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा से भारत का नक्शा बनता है, पढ़ा। उसी प्रकार नृत्य की सृष्टि मुद्रा से दुनिया का नक्शा बनता है और औरत के बाहरी व भीतर अंगों व संस्थानों के नामों के द्विपों, प्रान्तों, राष्ट्रों आदि के नाम होंगे। यदि पृथ्वी को भारतीयों ने माँ समझा है तब हम विपरती के सूत्र से समझ सकते हैं कि पृथ्वी कैसे पैदा हुई।

माँ कैसे पैदा हुई यानि लड़की या लड़का कैसे पैदा होता है ठीक उसी प्रकार विपरित के सूत्र के आधार प समझ सकते हैं कि पृथ्वी कैसे पैदा हुई?

यदि एक लड़की नृत्य की सृष्टि में हो तब दुनियां का मानचित्र बन जाएगा । ऐसे नृत्यों की कई मुद्राएं होती है। परन्तु सृष्टि मुद्रा पृथ्वी की तरह होती है इसलिए उसका नाम भी सृष्टि मुद्रा रखा गया। लड़की नाचती हुई अपने दोनों हाथ उल्टी तरफ से यानि पीठ की तरफ मुड़कर ऐड़ियों को पकड़ती है उसे सृष्टि मुद्रा कहा जाता है। इस मुद्रा में लड़की एक गोल घेरा सा बनाए हुए होती है। फिर उसे एक गंद का आकार देने पर पृथ्वी का आकार बन जाएगा और दुनियां के मानचित्र की तरह उभर आएगा। फिर उसी प्रकार जैसे पृथ्वी को भौगोलिक दृष्टि से छः भागों में बांटा है उसी प्रकार नर्तयी को भी छः भागों में बाँटा जा सकता है। नर्तयी की दोनों टाँगें उ. अमेरिका व द. अमेरिका हुई। ह्रदय. केन्द्र अफ्रीका हुआ। वक्षस्थल यूरोप व सिरका हिस्सा पूरा एशिया हुआ। जहाँ दोनों हाथों का मिलन का आशय आस्ट्रेलिया से है।

ठीक सूत्र के आधार पर सृष्टि मुद्रा जो गोल होती है वैसा ही पृथ्वी का आकार हुआ। अतः पृथ्वी को माँ कहना उपयुक्त है। ऐसे गुणों के आधार पर भी माँ ही कहा जा सकता है। हमारे ऋषियों मुनियों द्वारा पृथ्वी को माँ कहना ठीक ही नहीं बल्कि सर्वश्रेष्ठ है। उनकी दृष्टि सही थी।

अब यदि हमें पृथ्वी को समझना है तब एक औरत को समझ कर पृथ्वी को समझा जा सकता है। जिस प्रकार भारत का प्रतीक आदमी है उसी प्रकार पृथ्वी का प्रतीक औरत है। सभी खाद्य पृथ्वी से पैदा है, उसी प्रकार हम सभी भी औरत से पैदा हुए हैं। औरत में पैदाईश के सभी गुण मौजूद है उसी प्रकार पृथ्वी में भी सभी गुण मौजूद है। पृथ्वी में जिस प्रकार का बीज डालोगे उसी प्रकार के गुण उसमें आ जाएंगी और उसी प्रकार का पौधा निकल आएगा और वैसे ही फल व बीज होगा। इसलिए कि सभी गुण मौज्द है।

इसी प्रकार विपरीत के सिद्धान्त के अनुसार जो गुण पृथ्वी में वैसे ही गुण औरत में है। पृथ्वी विशाल है उसी प्रकार औरत का ह्रदय भी विशाल है। औरत पूर्ण होती है आदमी अपूर्ण है। वैज्ञानिकों की राय से औरत में 24 सैल होते हैं और आदमी में 23 जब औरत के 24 सैल आदमी के 24 सैल से मिलने पर लड़की का जन्म होता है जो पूर्ण है। आदमी के 23 सैल औरत के 24 सैल मिलने पर लड़का पैदा होता है जो अपूर्ण है। इसलिए आदमी ज्यादा परेशान रहता है।

परमात्मा व प्रकृति दो ही है। प्रकृति यानि पृथ्वी का पदार्थ दृश्यमान है। पृथ्वी भी दृश्यमान है परन्तु परमात्मा अदृश्य है लेकिन परमात्मा पृथ्वी यानि पदार्थ के हर कण में समाया हुआ है। यदि पृथ्वी को समझना है तब औरत को समझ लीजिए– पृथ्वी समझ आजाएगी। दोनों एक दूसरे के प्रतीक हैं। हमारे वैज्ञानिकों ने व आर्युवैदिक विद्वानों ने मानव शरीर की बीमार अवस्था को ठीक करने में औषधियों की खोज की है। वे औषधियाँ आर्युवैदिक में सोना भस्म, लोहा भस्म, ताँबा, चान्दी, अभ्रक भस्म आदि भस्में बनाई जाती थी और बीमारी में पूरी तरह कारगर भी होती थी। जब इन धातुओं की मात्रा मानव शरीर में कम होती है तब इनकी भस्में बनाकर दी जाती थी और आज भी दी जाती है। रोग का निदान तुरन्त होता है। आज का वैज्ञानिक यदि शरीर में खून की कमी हो तब आईरन की गोलियां देते हैं जिससे खून जल्दी शरीर में बनता है। इसके अभव में यानि शरीर में खून न होने पर चक्कर आना, काँपना आदि होती है। उठने, बैठने में तकलीफ व खून की ज्यादा कमी होने पर पागलपन जैसे दौरे शुरू हो जाते हैं।

अतः आदमी हो या औरत, सबसे शरीर में इन धातुओं का होना अनिचार्य है। इसके अभाव में आदमी या औरत बीमार हो सकते हैं।

अब यदि हम औरत और पृथ्वी को एक ही प्रकार की संज्ञा देते हैं जैसा कि हमारे ऋषि–मुनियों ने दी है तब हमें समझना चाहिए कि जैसे औरत बीमार होती है उसी प्रकार पृथ्वी भी बीमार हो सकती है और यदि पृथ्वी बीमार है तब उसका ईलाज भी ठीक उसी प्रकार ही होगा जैसे एक औरत होने पर ईलाज होता है।

आज हमनें पृथ्वी से अरबों टन लोहा व सोना बाहर निकाल लिया और निरन्तर निकाल ही रहे हैं। सोना, ताँबा, अभ्रक आदि अनेक किस्म की धातुएं पृथ्वी से बाहर कर रहे हैं। पृथ्वी का तेल जो औरत के खेन की तरह है, को भी आज मानव बहुत ज्यादा मात्रा में निकाल चुका है। जहाँ अरब देश है वहाँ पृथ्वी का ह्रदय स्थल है और ह्रदय स्थल में ही सबसे ज्यादा खून होता है। ऐसे खून शरीर के सभी हिस्से में होता है परन्तु ह्रदय स्थल पर खून ज्यादा मात्रा में होता है।

ऐसे प्राकृतिक नियमों के तहत उपयुक्त मात्रा में पृथ्यवी से तेल लिया जा सकता है क्योंकि उपयुक्त मात्रा में तो उनहें देना ही पड़ता है– वह अनिवार्य भी है। परन्तु अति

मात्रा में तेल निकालना खतरे से खाली नहीं है। एक औरत को मासिक धर्म उपयुक्त समय में आना भी अनिवार्य है लेकिन ब्लडिंग होने की अवस्था खतरे की घंटी है। परन्तु पृथ्वी का खून अधिक मात्रा में निकाल चुके हैं, और इसे बेमतलब नष्ट भी किया है और कर रहे हैं। इसलिए अब यह धरती माँ बीमार अवस्था में पहुंच गई है और समय–समय पर इसमें कम्पन हो रहा है। यह बीमारी के लक्षण हैं। इनका ईलाज भी अनिवार्य है।

इसलिए भारतीय साधु सन्त पैदल यात्रा करते थे और पृथ्वी के तेल पर सवारी करना धर्म के विपरीत समझते थे। भारतीय परम्परा में लोहे का दान देना भी इसी बात का प्रमाण है कि लोहे को जोतकी को (डाकोत) दान के बाद उसे पृथ्वी के हवाले करे। लोहे की बनी चीजों का उपयोग भारतीय नहीं किया करते थे। लकड़ी की थाली में भोजन करना अपना धर्म समझते थे। तमाम परम्पराओं को पृथ्वी का ख्याल रखते हुए अपनाया जाता था।

शायद आपका ख्याल हो कि पहले तो इतना विज्ञान नहीं था। इन सबकी क्या आवश्यकता थी। विज्ञान तो अभी तरक्की कर पाया है। परन्तु ऐसा नहीं है कि विज्ञान आज ही तरक्की कर पाया है। इससे पहले भी हजारों बार विज्ञान ने तरक्की की है और समाप्त हुआ है। यह ऐसा ही है जैसे सूर्य हर रोज उदय होता है और अस्त होता है। विज्ञान भी जन्मा और समाप्त हुआ है। क्योंकि ज्यादा तरक्की भी विनाश की ओर ले जाती है।

आज आम आदमी पैदल चलना अपमान समझता है। तेल से चलने वाले वाहन पर चलना शान समझता है। आज साधु सन्त भी कारों में घूमते हैं। इसलिए आज प्रत्येक आदमी शारीरिक दृष्टि से बीमार है। हृदयघात का हर समय खतरा बना रहता है और हो भी रहा है।

अतः हमें पृथ्वी की सार संभाल करनी है तब तो इन तमासम बातों पर ख्याल करना होगा अन्यथा यह पृथ्वी स्वयं समझदार है।

स्वयं अपना ईलाज करना जानती है। क्योंकि अरबों टन लोहा प्रत्येक राष्ट्रों ने इस पृथ्वी से निकाला है। इन सबकासे जल समाधि दी जाए तब तत्काल एक दवा के रूप में प्रभाव कर कता और पृथ्वी फिर अपनी स्वस्थ अवस्था में आ सकती है।

सन् 1990 में कुवैत पर इराक का हमला हुआ तब वहां के कुओं में आग लगा दी गई। तब देखा गया कि पश्चिम राजस्थान में तमाम हरी फसलों के दाना नहीं पड़ा था और फसलें यों ही नष्ट ही गई थी। यहां पश्चिमी राजस्थान में बारानी फसलों में मोठ–बाजरा व गंवार आदि की सलें थी जिनमें फली बिलकुल नहीं लग पाई। फसलें हरी खड़ी थी परन्तु फली किसी में भी नहीं लगी। इसका सीधा तात्पर्य निकलता है कि पृथ्वी में वो शक्ति नहीं रही कि फसलों में दाना दे सकें।

अभी जितनी भी फसलें होती हैं उन सबमें वह पहले वाली ताकत भी नहीं हैं क्योंकि पृथ्वी में वह ताकत भी नहीं रही जो पहले थी। इसलिए पहले अनाज में ताकत थी आज के अनाज में उतनी ताकत भी नही रही है जितन शक्ति पहले थी। पहले घरों में खिचड़ी बनाई जाती थी उस समय खिचड़ी जब चूल्हे पर पकती तब चूल्हे से दो फुट दूर रहना पड़ता था व चम्मच भी बड़ा लकड़ी का होता था, उससे दो फुट दूर से ही हिलाना पड़ता क्योंकि खिचड़ी हांडी या तपेली से फुदक–फुदक कर बाहर आती। परन्तु आज जब खिचड़ी बनाते हैं तब तपेली के ऊपर रखे ढक्कन के भी खिचड़ी का दाना तक नहीं लगता। क्योंकि आज के अनाज में ताकत नहीं के बराबर है इसलिए आदमी में भी ताकत कैसे आएगी। पृथ्वी में ताकत नहीं तब अनाज में ताकत कैसे होगी। इसलिए आज पृथ्वी को इन धातुओं की आवश्यकता है जो मानव ने पृथ्वी से बाहर निकाल लिया है।

सिर्फ अनाज ही क्या? हम जो भी खाते हैं सब पृथ्वी से आता है। हम जो दूध पीते हैं वह भी उसी पृथ्वी से आता है क्योंकि पशु घास खाता है, वह घास भी ताकतवर नहीं तब पशु व उसका दूध भी ताकतवर कैसे हो सकता है? क्योंकि पृथ्वी में वह ताकत नहीं रही जो होनी चाहिए।

आज कई अरबों टन लोहा हथियारों टेंकों व अनेक जहाजों व अन्य सामानों में उपयोग किया जाता है। आज हमारी उपयोगिता धातुओं के प्रति बहुत बढ़ गई है। कई अरबों टन धातुएं बेकार ही राष्ट्रों के पास पड़ी है जिनका उपयोग नहीं है। कम से कम

उन्हें तो चाहिए कि जो धातुएँ उपयोगी नही रही है उन्हें तो जल समाधि दे ही देनी चाहिए। क्योंकि जिन धातुओं का उपयोग नहीं रहा है तब उन धातुओं को पास के जलाशय या समुद्र में डाल देना चाहिए। इससे भी बहुत राहत इस पृथ्वी को मिल सकती है।

इस साल सन् 2001 में सारे देश में वर्षा अच्छी हुई। राजस्थान में बराबर तीन सालों से अकाल की स्थिति है। राजस्थन के गांवों में ट्यूबवैल लगे हैं। फसलें अच्छी है। वर्षा पर निर्भर होने वाले किसानों की भी फसलें अच्छी है परन्तु सभी किसानों को यह शिकायत है कि फसलों में दाना नहीं है। फसलें अच्छी है। बिना दाने की ही फसलें अब नष्ट हो रही है। यह शिकायत ट्यूबवैल लगाए हुए किसानों को भी है और वर्षा पर निर्भ है उनको भी है।

यदि फसलों को कीड़ा लगता है तब आज किसान फसलों में रसायनिक दवाईयां छिड़कते हैं। फसलों को हर प्रयास से बचाने का उपाय करते है। परन्तु जब फसलों में दाना ही नहीं पड़ेगा तब किसानों के पास क्या उपाय रह जाएगा? उस पर वैज्ञानिक भी कुछ कर सके, उम्मीद नहीं बन सकती।

बरसात अच्छी हुई। फसलें अच्छी खड़ी है परन्तु फसलों में दाना नहीं। पति–पत्नी हष्टपुष्ट है लेकिन सन्तान नहीं, अवश्य कुछ कारण है। वैज्ञानिक दृष्टि से कहीं रूकावट या योग्य हार्मोन्स की कमी है। आज उसे शायद पूरा भी किया जा सकता है। परन्तु फसलों में दाना नहीं, वह कमी पूरी करना वैज्ञारिनकों के वश की बात दिखाई नहीं पड़ती।

ट्यूबवैल व वर्षा के पानी में कमी नहीं है। यदि पानी में कमी है तो वह भी पृथ्वी के कारण ही है। इसलिए पूराने समय में जब किसी के सन्तान नहीं होती तब वह दूसरी औरत से शादी करता। तब सह समझ थी कि अवश्य औरत में कुछ कमी है। परन्तु आज हमने पृथ्वी की अति मात्रा में धातुएं निकाल कर कमी पैदा कर दी है। यह बात प्रत्येक के समझ आ जानी चाहिए कि औरत व पृथ्वी एक दूसरे के प्रतीक हैं। दोनों को समझकर दोनों की समस्या का निदान खोजा जा सकता है।

हमारे धार्मिक रिवाजों के अनुसार आदमी के मरने पर उसके शरीर को जलाया जाता या दफनाया जाता है। इस समय पृथ्वी की स्थिति को देखते हुए मुर्दों को दफनाना ही चाहिए। क्योंकि हमारे शरीर में भी सभी प्रकार की धातुएँ पृथ्वी द्वारा ली हुई है जो अति ताकतवार होती है। हमारी हड्डियां जल्दी से सामपत नहीं हो पाती है। पशुओं की हड्डियों से हमारे शरीरों की हड्डियों में विशेष ताकत होती है। इसलिए हिन्दुओं में अस्थियों को गंगा में विसर्जन करना ठीक बताया कि पानी द्वारा विशिष्ट अस्थियों की शक्ति पृथ्वी को जल्दी ही मिल जातीप है। सारे भारत से अस्थिों का विसर्जन गंगा में किया जाना धर्मिक कृत्य माना जाता है इससे पृथ्वी को बहुत बड़ी राहत मिलती है।

मुर्दा दफनाने की स्थिति में भी पृथ्वी को वह शक्ति मिल जाती है परन्तु उसमें समय लगता है क्योंकि धरती पर वर्षा होने पर ही हड्डियों का सिंचित होना शुरू हो जाता है। जिससे निरन्तर शक्ति पृवी को वापिस मिलती रहती है। हमारे शरीर में हड्डियां विशेष ताकत रखती है। हड्डियां में हमारी पृवी के धातुओं का ही समावेश है जो हमें उनके द्वारा पोषित अवस्था में मिलते हैं। ईसाईयों में मुर्दा दफनाने के लिए वे मजबूत पेटी बनाते हैं और शव को पेटी में बन्द कर दफनाते हैं। वह पेटी काफी मजबूत होती है। शायद पृथ्वी में उसे गलने के लिए काफी समय लग सकता है। उस पेटी के समाप्त होने पर ही शव का सार मिलना शुरू होता है। यह प्रक्रिया भी लम्बी है इसलिए शव को सीधा पृथ्वी में दफनाना ही उचित है। लेकिन अस्थियां जो जलाने पर जलने से बच जाती है वह अतिविशिष्ट होती है जिन्हें गंगा में विसर्जन करना अति श्रेष्ठ है व पृथ्वी के लिए कारगर उपाय है।

हमारे विश्व के सभी धार्मिक रीति रिवाजों में पर्यावरण का विशिष्ट ध्यान रखा गया है। आज उन रीति रिवाजों को न समझने व उनके प्रति श्रृद्धा न होने के कारण बहुत सी आपदा खड़ी हुई है।

हमारा शरीर पृथ्वी से बना है। हमने जो कुछ भी ग्रहण किया है वह सब पृथ्वी से ही किया हैं इसलिए शरीर छोड़ने पर पृथ्वी के हवाले ही करना चाहिए ताकि व अपनी पूर्ति कर सके। शव को जलाने की स्थिति में अस्थियों को गंगा में विसर्जन करना अति

श्रेष्ठ उपाय है। पृथ्वी को मूल तत्व शीघ्र मिल जाता है क्योंकि पानी इसे शीघ्र घोलकर पृथ्वी की नशों में पहुंचा देता है जिसे अग्नि नहीं जला पाती है।

लेकिन यह तो सूक्ष्म उपाय है। इस उपाय से पृथ्वी की धातुओं की कमी पूर्ति उनकी इस समय संभव नहीं है, क्योंकि अभी हमने अपनी सुख सुविधा व झगड़ों के कारण अति मात्रा में धातुएँ पृथ्वी से बाहर निकाल ली है जिसे वापिस करना अभी बहुत अनिवार्य है वरना यह पृथ्वी स्वयं हमें अपने भीतर समा लेगी। अभी भी वैज्ञानिकों को व प्रत्येक आदमी को ऐसा समझकर, उपाय करना ही चाहिए।

यह तमाम वैज्ञानिक तथ्य है या नहीं परन्तु धार्मिक तथ्य अवश्य है। इसमें कोई दो राय नहीं है। सारे भारतवर्ष से अस्थियाँ हरिद्वार में विसर्जित की जाती है और कहते हैं कि वहां के पानी में कभी कीड़े–मकोड़े या जीव पैदा नहीं होते हैं। कई लोग पानी की बोतलें भरकर हरिद्वार से घर लाकर रख देते है। लेकिन उस पानी में जीव या कीड़े नहीं पड़ते हैं। हरिद्वार में गंगा बहती है जो हिमालय पहाड़ से आती है। हरिद्वार के अलावा हिमालय की ओर से गंगा का लिया हुआ पानी में कुछ समय बाद जीव पड़ जाएंगे। हरिद्वार से आगे भी समुद्र की तरफ बहती गंगा से पानी लिया जाए तब उसमें भी कीड़े पड़ सकते हैं लेकिन हरिद्वार में गंगा के पानी में कभी भी जीव या कीड़ा नहीं पड़ता है। शायद इसके पीछे कई प्रकार की कहानियाँ प्रचलित है परन्तु इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि हरिद्वार में अस्थियों का विसर्जन करना ही महत्वपूर्ण बात है, यह उस पानी से बखूबी साबित है कि मानव अस्थियों से भरपूर ताकत है जो इसी धरती माँ की है।

ये अस्थियाँ अब पृथ्वी में धातुओं की कमी को पूरा नहीं कर पा रही हैं। क्योंकि लोहा, सोना, अभ्रक आदि धातुएं बड़ी मात्रा में निकाल चुके हैं। पृथ्वी से तेल भी अति मात्रा में नष्ट कर चुके हैं। इन धातुओं की पूर्ति तो अब धातुओं से ही करनी पड़ेगी। वरना पृथ्वी इस कमी को स्वयं पूरा करेगी।

।। युद्ध बन्द हो ।।

कहते हैं कि इंन दो हजार सालों में इस धरती पर लगभग पाँच हजार युद्ध हासे चुके हैं। युद्ध में जनहानि होति है। धन व पशु हानि भी होती है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी रक्षा

के लिए सेना तैयार रखता है। उन्हें लड़ने का प्रशिक्षण दिया जाता है और युद्ध में दोनों तरफ से सैनिक मारे जाते हैं। सैनिकों की पत्नियों, बच्चों व माता–पिता बिलखते रह जाते हैं। यह सब एक तरफ से नहीं होता है–दोनों राष्ट्रों के सैनिक शहीद होते हैं।

प्रत्येक राष्ट्र अपनी रक्षा हेतु साठ प्रतिशत से सत्तर प्रतिशत तक खर्च करता है। परमाणु परीक्षण व हथियारों की खरीद फरोक्त पर अरबों का धन खर्च होता है। यह सारा धन राष्ट्रों के पास जनता का होता है और साठ–सत्तर प्रतिशत रक्षा हेतु खर्च किया जाता है।

आज तो इस वैज्ञानिक युग में आदमी को समझदार होना चाहिए। युद्ध जैसी हरकत आज के सभ्य राष्ट्रों के बीच शोभा नहीं देती है क्योंकि युद्ध में दोनों ओर से जनहानि होती है। आदमियों के मारने का प्रक्षिण देना और फिर आपस में लड़वाना मानव सभ्यता के खिलाफ है।

शायद आज का मानव महाभारत व रामायण के युद्धों का अनुकरण कर न्यायहित में युद्ध को उचित समझ रहा हो कि न्याय के लिए युद्ध अनिवार्य है। परन्तु महाभारत में इस प्रकार का युद्ध नहीं था। कई कहते हैं कि उस समय उच्चे कोटि का विज्ञान था। आज के हथियारों की तरह ही विनाश बाण थे। रामायण व महाभारत में धनुष व तीरों की लड़ाई थी। धनुष का आशय हमारे मुँह का ऊपर वाला होंठ और तीर यानि बाण का आशय वाणी से है। यह सिर्फ वाक युद्ध था। यदि हथियारों का युद्ध होता तब दस हजार साल पहले रामायम में धनुष व तीरों की लड़ाई थी और उसके पाँच हजार साल बाद महाभारत में भी धनुष व तीरों की लड़ाई थी। इसका मतलब हुआ कि रामायण के बाद पाँच हजार साल तक धनुष व तीरों से आगे नही बढ़ सके। इसके अलावा अन्य आविष्कार नहीं कर सके। परन्तु ऐसा नहीं था। ये दोनों कहानियाँ धार्मिक है और यह सिर्फ वाक युद्ध था। परन्तु आज राष्ट्र वाकयुद्ध न लड़कर शारीरिक युद्ध लड़े जाते हैं जो अज्ञान का कारण है।

युद्ध से कभी भी शान्ति नहीं हो सकती है। हार–जीत होती है। कभी–कभी हारा हुआ राष्ट्र भी जीत जाता है कभी जीता हुआ हार जाता है। इस हार–जीत से हमेशा लड़ाई कायम रहती है। जब युद्ध होते है। तब शाति होती है और फिर से युद्ध की तैयारी दोनों तरफ से जारी रहती है। फिर अशान्ति की तैयारी शुरू हो जाती है।

फिर युद्ध के लिए हर समय तैयार रहना पड़ता है। इसलिए वह शांति नहीं सिर्फ अशांति की तैयारियां चलती है। फिर से परेड़ चलती है। हथियारों की नई खरीद फरोक्त की जाती है। नए सैनिकों को भर्ती किया जाता है यानि फिर अशांति की तैयारी शुरू हो जाती है।

यह क्रम चलता रहता है। प्रत्येक राष्ट्र को इस ओर अपना पूरा श्रम लगाना होता है यदि युद्ध बन्द होता है तब भी छुट–पुट लड़ाई चलती रहती है। युद्ध में एक–दूसरे राष्ट्र द्वारा सैनिकों को बन्दी बनाया जाता है उन्हें यातना दी जाती है उन्हें उमर भर के लिए अपाहिज या कैद दी जाती है। यह तमाम अमानवीय कृत्य है। ऐसा करना आज के युग में अनिवार्य नहीं है परन्तु फिर भी ऐसा हो रहा है। यह सब अलग–अलग राष्ट्र संगठनों के कारण है।

यदि युद्ध पृथ्वी पर सभी राष्ट्रों को हमेशा के लिए बन्द करना है तब भारत का अनुकरण करना होगा। भारत में अलग–अलग रियासतें थी। राजाओं के शासन थे। प्रत्येक राजा अपनी रक्षा हेतु सेना रखता था। रक्षा के लिए गढ़ बनाये गये थे। बड़ी–बड़ी खाईयां व परकोटे बनाये गये। लाखों करोड़ों लोगों का श्रम लगाकर गढ़ तैयार किए। लड़ने के लिए झरोखे बनाए गए ताकि हमला होने पर गोलियां दागी जा सके। दरवाजों पर बड़े–बड़े फाटक लोहें के क्रुशनुमा किले लगाए जाते थे कि आक्रमणकारी भीतर प्रवेश नहीं कर सके। राजा एक दूसरे पर हमला करते थे। युद्ध हारे व जीते जाते थे। कईयों को कैद किया जाता था। कई औरतें वियोग में अपमानजनक स्थिति का सामना न कर सकने की अवस्था में जलकर भस्म हो जाती थी। बड़ा ही ह्रदय विदारक दृश्य होते थे।

सन् 1947 में भारत आजाद हुआ। एक महासंध्ङ बना। सभी रियासतें एक होकर भारत का संविधान रचा गया और लोकतन्त्र व्यवस्था कायम हुई। युद्ध हमेशा के लिए समाप्त हो गए। सारे गढ़ व खाईयां बेकार हो गई। सारा श्रम बेकार हो गया।

इसी प्रकार यदि विश्व के राष्ट्रों को हमेशा के लिए युद्ध बन्द करना है तब तो सारे विश्व की एक सशक्त सरकार हो, जैसे भारत की एक सरकार है। उसी प्रकार सभी राष्ट्र मिलकर एक महासंघ बनायें। सारे विश्व का एक ही महासंघ बनाये। सारे विश्व का एक ही संविधान हो। एक ही राष्ट्रपति हो तब युद्ध हमेशा के लिए समाप्त हो सकता है। यह

कार्य मुश्किल जरूर है परन्तु असंभव नहीं है। क्योंकि सभी शांति व्यवस्था चाहते हैं। युद्ध कोई नहीं चाहता है।

इस समय विश्व में अलग–अलग राष्ट्रों का संगठन है। संगठन का मूल तत्त्व है कि संगठन हमेशा किसी के खिलाफ ही होगा। यदि संगठन खिलाफ नहीं है तब संगठन नहीं हो सकता। संगठन चाहे राष्ट्रों का हो, समाज का व राजनैतिज्ञों का हो, चाहे धर्म का हो यदि संगठन है तब वह किसी न किसी के खिलाफ ही होगा। वहाँ हमेशा झगड़े कायम रहेंगे। अब यदि सारा विश्व एक सूत्र में बन्ध जाए, एक ही झण्डे के तले सारे विश्व की शासन व्यवस्था चले तब कोई संगठन नहीं रह जाएगा। और युद्ध हमेशा–हमेशा के लिए इस धरती पर से समाप्त हो जाएगा। सभी राष्ट्रों के सभी हथियार अनुपयोगी हो जाएंगे। सारे हथियारों व टेकों के जखीरे वापिस पृथ्वी के हवाले किए जा सकते हैं जिससे फिर से नई ताकत व पूरी ऊर्जा मानव में पैदा होने का अवसर मिल जाएगा।

विश्व में हजारों सालों तक शांति का वातावरण रह सकता है। क्योंकि तब फिर महासंघ के सामने सिर्फ व्यवस्था का प्रश्न रहता है कि व्यवस्था कैसी अच्छी हो सकती है। युद्ध का खतरा व प्रकोप नहीं होगा। युद्ध पर कुछ भी खर्च नहीं होगा।

विश्व सरकार के लिए विश्व की सभी जनता को उठना होगा। सभी राष्ट्रों के सैनिकों और राजनैतिज्ञों को सहयोग करना पड़ेगा, तभी सारे विश्व की एक सरकार हो सकती है। इस ओर सभी नागरिकों को जागरूक होना पड़ेगा। तभी यह संभव हो सकेगा। सर्वप्रथम इसके लिए सक्षम राष्ट्रों को कदम उठाना चाहिए क्योंकि यह कार्य मानव हित का है और सक्षम राष्ट्र इसकी आसानी से पहल कर सकते हैं।

भारत संघ बना तब भी बहुत सी कठिनाईयाँ एक बार सामने अवश्य आई परन्तु उसका निवारण व हल तुरन्त हो गया। सबसे पहले बीकानेर के महाराजा श्री सार्दुल सिंह जी महासंघ में शामिल हुए और अपनी रियासत का शासन भारत तुरन्त महासंघ के हवाले कर दिया। आज उसी बीकानेर की धरती से प्रथम आवाज उठ रही है कि विश्व की एक सरकार बने तभी धर्म की स्थापना संभव है। युद्ध से मुक्ति मिले वरना बिना शांति धर्म की स्थापना विश्व में संभव नहीं है। धर्म की स्थापना विश्व में हमेशा के लिए शांति स्थाई रूप से पैदा कर देगा।

आज फिर से बीकानेर की जनता को विश्व सरकार के लिए अग्रणी होना होगा। विश्व सरकार का आह्वान बीकानेर की भूमि से सारे विश्व में किया जाना चाहिए ताकि विश्व के सभी झगड़े समाप्त हो सकेंगे और सारे विश्व में धर्म की संभावना हो सके।

यदि विश्व की सरकार हो तो किसी भी राष्ट्र को कोई नुकशान नहीं हो सकता है। सभी राष्ट्र सुख शांति व अमन चैन की सांस ले सकते हैं। सारे हथियार जो मानव विरोधी हैं सब बेकार हो सकते हैं। सारे संसार की व्यवस्था स्वस्थ व सुन्दरमय हो सकती है। तभी धर्म की स्थापना पूर्णतः संभव है। धर्म की स्थापना हो तब युद्ध सर्वप्रथम बन्द होने चाहिए और युद्ध बन्द होने यह विश्व सरकार बनने पर ही संभव है।

~~[illegible]~~

मिनाक्षी देवी योगनी स्वरूपा विद्यमहे मातृ शक्ति
प्रचोदयात् :

स्वामी श्रद्धानन्द गिरी
(बाबा)